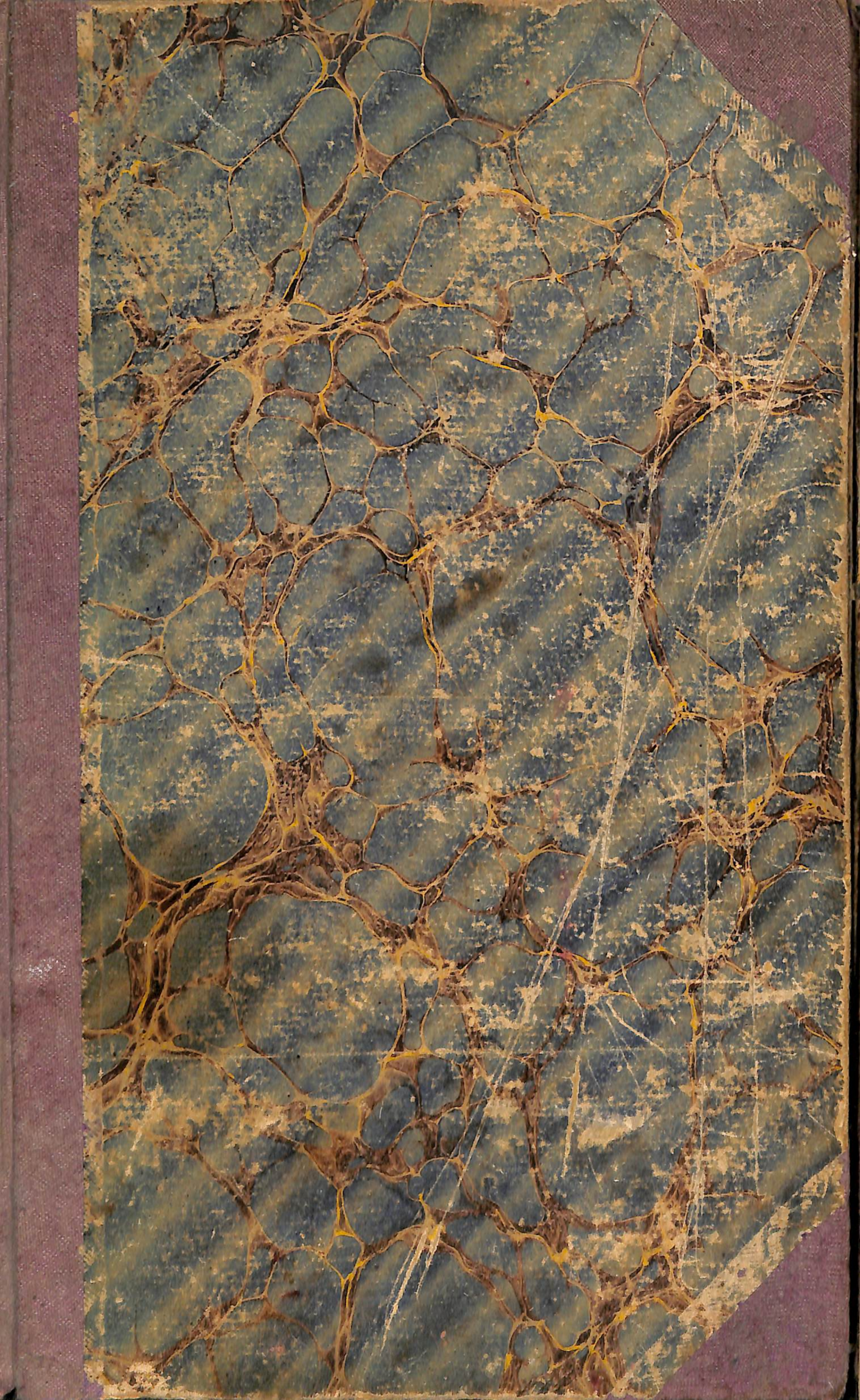
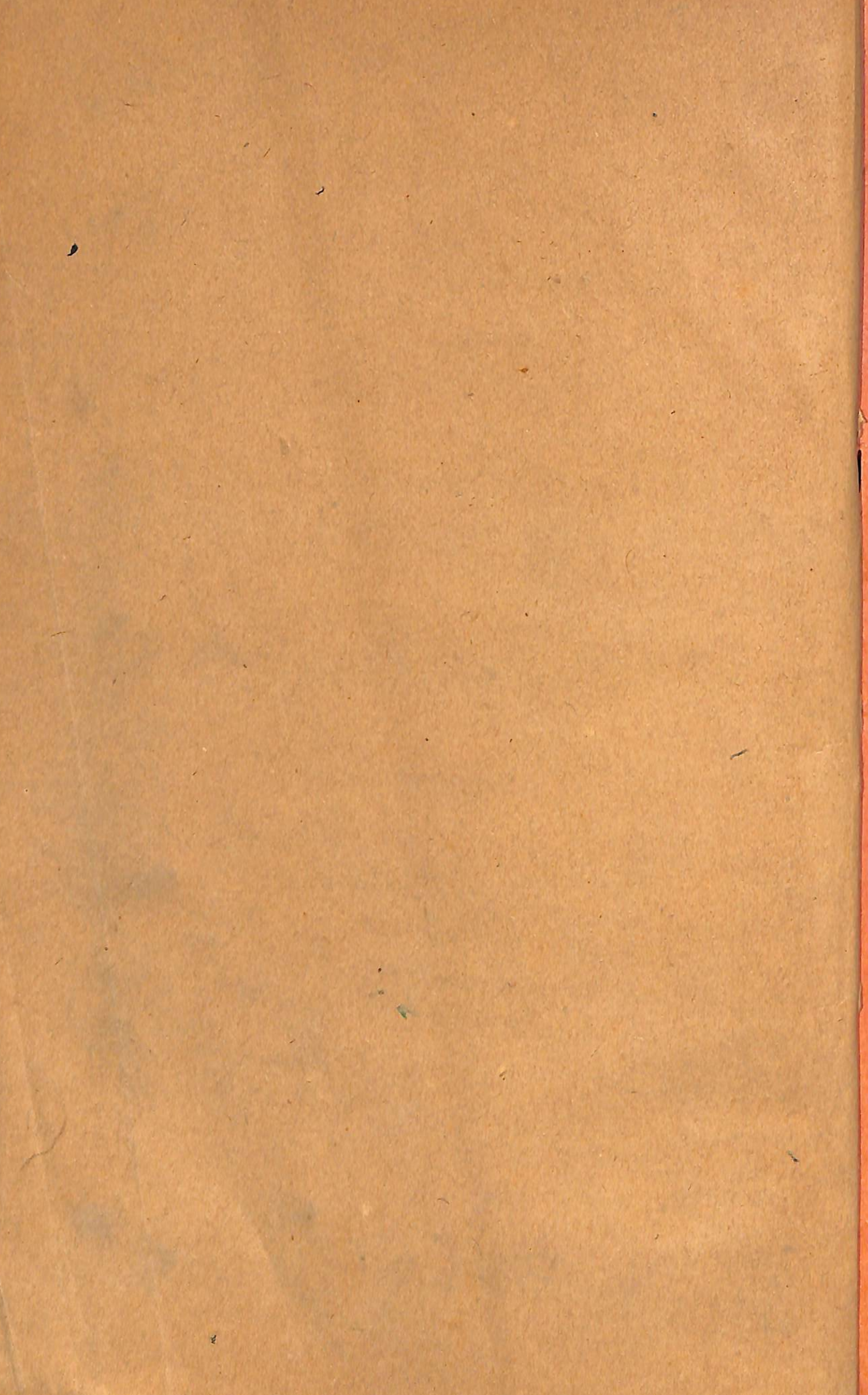




श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत

रामायण

॥ किष्किन्धा काण्ड ॥



श्री विनायकी टीका सहित

जो

वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ गूढ़ार्थ पूरित तथा विविध

कविवर वाणी विभूषित है.

जिसे

पं० विनायक राव (उपनाम कवि 'नायक')

(पूर्व) असिस्टेण्ट सुपरिंटेंडेंट ट्रेनिङ्ग इंस्टिट्यूशन

(साम्प्रत) पेंशनर

जबलपुर ने

रचकर प्रकाशित किया.



श्री नरमदा लहरी रायल प्रिन्टिङ्ग प्रेस जबलपुर में मुद्रित हुआ.

प्रथमवार २००० } सम्वत् १९६९ सन् १९१३ } न्यौछावर ।=) आ०

॥ सूचीपत्र ॥



भूमिका.

पंडितों का कथन है कि किष्किन्धाकाण्ड को गोस्वामी जी ने श्री काशी क्षेत्र में लिखा था, इसी से इस के आदि में काशी जी का माहात्म्य तथा शंकर जी के विष पान आदि का वर्णन है ॥

स्मरण रहे कि यह चौथा काण्ड मध्य का काण्ड है और यह सब में छोटा है. सब काण्डों का क्रम यह है कि सब से बड़ा बाल, उस से छोटा अयोध्या, उस से छोटा आरण्य और उस से भी छोटा किष्किन्धा है. फिर किष्किन्धा से बढ़ कर सुन्दर, सुन्दर से बड़ा लंका और लंका से बढ़ कर उत्तर काण्ड है. यद्यपि यह काण्ड सब से छोटा है तथापि इस में शिक्षा, नीति, वैराग्य आदि का ऐसी उत्तम रीति से संक्षेप में कथन है कि इस में यथार्थ संतोष मिलता है, तभी तो गोसाईं जी ने इस काण्ड को 'विशुद्ध संतोष सम्पादनो नाम चतुर्थस्सोपानः' कहा है।

इस काण्ड में वर्षा और शरद ऋतु का वर्णन बहुत ही अनूठी रीति से किया गया है, सन्मित्रों के सद्गुण और कुमित्रों के दुर्गुण भी गोसाईं जी ने थोड़े ही में समझाये हैं-

जितने ग्रंथों की सहायता अयोध्या तथा आरण्य कांड की श्री विनायकी टीका के हेतु ली गई थी, उन से कुछ अधिक ग्रंथों की सहायता इस में ली गई है और टीका का क्रम उन्हीं काण्डों के अनुसार है. इस छोटे काण्ड में लोगों ने बहुत से क्षेपक मिलाये हैं, वे सुभीते के हेतु पुरौनी में छाप दिये गये हैं।

वर्षा और शरद ऋतु के वर्णन में सम्मिलित शिक्षारूपी रत्न तथा किष्किन्धा काण्ड की प्रसिद्ध कहावतें भी पुरौनी में देखने योग्य हैं।

१ विद्वद्वर्य श्री मान् राय बहादुर पंडित सदाशिव जय राम एम. ए. संस्कृत प्रोफ़ेसर गवर्नमेण्ट कालेज जबलपुर, फ़ैलो इलाहाबाद यूनीवर्सिटी,

२ श्री मान् पंडित जगन्नाथ जी वैद्यराज गौड़ जबलपुर निवासी,

३ श्री मान् पंडित छकूलाल वाजपेयी मौज़ा जसपुरापुर ज़िला फ़तेहगढ़ निवासी (साम्प्रत) टीचर वरनेक्यूलर माडल स्कूल जबलपुर,

४ श्री मान् पंडित प्रेम शंकर दवे (साम्प्रत) क्लार्क आफ़ कोर्ट भंडारा

५ श्री मान् पंडित कपर्दी दत्त जी गौतम स्थान बैरगला इलाक़ा कोठी वाले- इन सब महाशयों को टीका में किसी न किसी प्रकार की सहायता हेतु अनेक धन्यवाद हैं।

अयोध्या कांड की अपेक्षा इस कांड में क़ाग़ज़ मोटा व चिकना लगाया गया है॥

जबलपुर
ता: १—१—१३

विनायक राव, पेंशनर

श्रीगोस्वामीतुलसीदासजीकृत

॥ रामायण ॥



श्रीविनायकीटीका सहित

॥ श्लोक ॥ *

> † कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ ।
> शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ ‡ गोविप्र वृन्दप्रियौ ॥
> मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्म्मौ हितौ ।
> सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्ति प्रदौ तौ हि नः ॥ १ ॥

---

* सूचना—इस काण्ड की कविता का पिंगल विचार इसी पुस्तक की पुरौनी में देखो ।

† "कुन्देन्दीवर" यहां पर कुंद के सदृश लक्ष्मण और इन्दीवर के सदृश श्री रामचन्द्र जी का ग्रहण होता है इसमें कोई २ यह शंका कर बैठते हैं कि पहिले लक्ष्मण और पीछे से रामचन्द्र जी ऐसा उलटा क्रम क्यों रक्खा, रामचन्द्र सूचक शब्द को पहिले रखना था, समाधान यह कि यह तो छन्द रचना के विचार से किया गया है और ऐसा कई बार भाषा में भी तो आया है यथा अयोध्या काण्ड में "लषन राम सिय जाहि बन, भल परिणाम न पोच" इत्यादि ॥ २८१ ॥ इस के सिवाय आगे चलकर 'मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञानखानि, अघ हानिकर' की टिप्पणी देखो ॥

‡ "गोविप्रवृन्दप्रियौ" इस विशेषण में बड़ी विशेषता है यज्ञ के समय मंत्रों के साथ जो आहुति अग्नि में डाली जाती है वह परमेश्वर तक पहुँचती है परन्तु इस आहुति के मुख्य कारण गौ और ब्राह्मण माने गये हैं जैसा कहा है—

श्लोक—ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ।
एकत्र मंत्रास्तिष्ठन्ति हवि रेकत्रतिष्ठति ॥ (अर्थात)

शब्दार्थ—कुन्देन्दीवर = कुन्द+इन्दीवर = कुन्द और नील कमल (के समान) सुंदरौ = दोनो सुंदर। अति वलौ = दोनों बड़े बलवान्। विज्ञान धामौ = विशेष ज्ञान के घर। उभौ = दोनों। शोभाढ्यौ = शोभा से दोनों परिपूर्ण। वरधन्विनौ = श्रेष्ठ धनुषधारी। श्रुतिनुतौ = जिनकी वेद ने स्तुति की है। गोविप्र वृन्द प्रियौ = गौ और ब्राह्मण के समूहों पर प्रेम रखने वाले।

मायामानुषरूपिणौ = माया से मनुष्य रूप धारण किये हुए। रघुवरौ = रघुकुल में श्रेष्ठ। सद्धर्मवर्मौ = सत्य धर्म के रक्षक। हितौ = हितकारी। सीतान्वेषणतत्परौ = सीता जी की खोज में लगे हुए। पथिगतौ = मार्ग में जाते हुए। भक्तिप्रदौ = भक्ति के देने वाले। तौहि = वे दोनों निश्चय करके। नः = हम लोगों को।

अन्वय—कुन्देन्दी वर सुन्दरौ, अति वलौ, विज्ञान धामौ शोभाढ्यौ, श्रुतिनुतौ, गो विप्र वृन्द प्रियौ, माया मानुष रूपिणौ, सद्धर्मवर्मौ, हितौ, सीतान्वेषण तत्परौ, पथिगतौ, उभौ तौ रघुवरौ हि नः भक्ति प्रदौ (भवताम्)।

अर्थ—कुन्द के फूल के समान (गौर वर्ण लक्ष्मण जी) और नील कमल के समान छवीले (श्री रामचन्द्र जी) दोनों बड़े बलवान्, अत्यंत ज्ञान शील, शोभायुक्त, श्रेष्ठ धनुषधारी, वेदों से स्तुत, गौ ब्राह्मणप्रेमी, माया को अंगीकार कर नर तनु धारी, सत्य धर्म के रक्षक, हितकारी, जानकी जी की खोज करने में तत्पर, मार्गगामी, दोनों वे रघुश्रेष्ठ (लषन राम जी) हमें भक्ति के देने वाले अवश्य होवें।

सरलार्थ—गौरवर्ण लक्ष्मण और श्यामवर्ण श्री रामचन्द्र जी, बलशाली, ज्ञानी, शोभायुक्त, धनुषधारी, वेदस्तुत, गौ विप्र प्रिय, नररूप, सत्य धर्म रक्षक, हितकारी, जानकी जी को खोजते हुए, बटोही दोनों भाई हमें भक्ति अवश्य देवें॥

अर्थात ब्राह्मण और गाय ये मानो एकही कुल के दो भाग किये गये हैं पहिले भाग में ब्राह्मण हैं जो मंत्रों के उच्चारण करने वाले हैं और दूसरे में गाय जिस के घी से आहुति बनती है तभी तो ब्राह्मण और गाय परमेश्वर को प्रिय हैं यहां तक कि इन के हेतु परमेश्वर अवतार भी धारण कर लेते हैं जैसा बालकाण्ड में लिखा है—

दोहा—विप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनू, माया गुण गोपार॥

* ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं।
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरं संशोभितं सर्वदा ॥
† संसारामय भेषजं सुखकरं श्री जानकीजीवनं।
धन्यास्ते कृतिनः पिवन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ—ब्रह्म = वेद। अम्भोधि = समुद्र। समुद्भवं = उत्पन्न हुए। कलिमल प्रध्वंसनं = कलियुग के पापों के नाश करने वाले। च = और। अव्ययं = अविनाशी। श्रीमत् शम्भु = श्री शंकर जी। मुखेन्दु सुन्दर = मुख चन्द्र के समान सुन्दर। वरं = श्रेष्ठ। संशोभितं सर्वदा = सदैव शोभायमान्। संसार आमय भेषजं = संसाररूपी रोग की औषधि। सुखकरं = सुखदाई। श्री जानकी जीवनं = श्री सीता जी के प्राणाधार। धन्याः ते कृतिनः = धन्य हैं वे सफल जीवित। पिवन्ति = पीते हैं। सततं = सदा। श्री राम नाम अमृतम् = श्री रामचन्द्र जी के नामरूपी अमृत को॥

अन्वय—ते कृतिनः धन्या (ये) ब्रह्माम्भोधि समुद्भवं कलिमल प्रध्वंसनं अव्ययं। श्रीमत् शम्भु मुखेन्दु सुन्दर वरं सर्वदा संशोभितं॥ संसारामय भेषजं सुखकरं च श्री जानकी जीवनं श्री राम नामा मृतम् सततं पिवन्ति॥

अर्थ—उन पुण्यात्माओं को धन्य है जो वेदरूपी समुद्र से निकले हुए, कलियुग के पापों को नाश करने वाले, अविनाशी, श्री शंकर जी के चंद्ररूपी मुख को सदैव शोभायमान करने वाले, संसाररूपी रोग की औषधि, सुखदाई और श्री सीता जी को हुलसाने वाले श्री रामचंद्र जी के नाम रूपी अमृत को सदैव पान करते रहते हैं॥

सरलार्थ—धन्य है उन पुण्यात्माओं को जो सदैव वेद के साररूप पापनाशक अविनाशी, शिव रटित, भव भेषज, सुखद और जानकी जीवन ऐसे राम नाम को जपा करते हैं॥

---

* 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ 'वेद' का है जैसा लिखा है अमरकोष में 'वेदस्तत्वं तपो ब्रह्म ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः।

† संसारामयभेषजं=संसाररूपी रोग की औषधि।

इस से यह अभिप्राय है कि जिस प्रकार औषधि के सेवन से रोग मिट जाता है इसी प्रकार ईश्वर की भक्ति से संसाररूपी रोग मिटता है अर्थात् प्राणी संसार के आवागमन से छुटकारा पाकर मुक्त हो जाता है।

सो०—मुक्ति * जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानि कर।
जहं बस शम्भु भवानि, † सो काशी सेइय कस न॥

* मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघहानि कर।

मीमांसा शास्त्र का यह न्याय है कि 'पाठक्रमात् अर्थक्रमो बलीयान्' अर्थात् पाठ के क्रमसे अर्थ का क्रम बलवान् होता है भाव यह है कि—यदि पाठ में शब्दों का क्रम उलट पुलट होवे तौभी उसे अर्थ के हेतु यथोचित रीति से पलट देना चाहिये यथा 'यवाग्वा जुहोति यवागूं पचति' इस में यद्यपि पहले यवागू का होम और पीछे पाक ऐसा पाठ का क्रम है तौ भी अर्थ के लिये पहिले पाक और पीछे होम लेना चाहिये, कारण यवागू पदार्थ बिना सिद्ध हुए हवन नहीं बन सक्ता, इसी के अनुसार इस सोरठे में यद्यपि पहले 'मुक्ति जन्म महि,' फिर 'ज्ञानखानि' और उस के पश्चात् 'अघ हानि कर' ऐसा लिखा है तौ भी अर्थ संगति के हेतु पहले अघ हानि होकर ज्ञान खानि होवेगा तब तो मुक्तिकी प्राप्ति हो सकेगी इसहेतु ऐसा अर्थ करने का क्रम उचित होगा॥

† सो काशी सेइय कस न—इस को पुष्टि करने वाले नीचे के श्लोक को देखिये:—

श्लोक—असारे इह संसारे, सारमेतच्चतुष्टयं।
काश्यांवासः सतांसंगः गंगाम्भः शंभुपूजनम्॥

अर्थात् इस सार रहित संसार में चार ही बातें सार समझीं गई हैं (१) काशी का निवास, (२) सज्जनों की संगति, (३) गङ्गाजी का जल और (४) शिवजी का पूजन, सो ये चारों बातें काशी जी में सुलभ हैं इसी हेतु काशी बास की प्रधानता कही गई है॥

और भी भजन—आनँद बन गिरजापति नगरी मन क्यों ना बास लगावत॥ टेक॥

काशी समान नहीं द्वितियापुर ब्रह्मादिक गुण गावत।
बेद पुराण बखानत महिमा शारद पार न पावत॥
निकट प्रवाह बहत जहँ गङ्गा सुर नर मुनि हर्षावत।
जाके दरस परस अरु मज्जन कोटिक पाप नसावत॥
कीट पतंग जीव नाना विधि सब की मुक्ति करावत।
अंतैकाल सदाशिव शंकर तारकमंत्र सुनावत॥
अगम अपार अनूपम उपमा शेष सहस मुख गावत।
राम सियापद हेत प्रेम प्रभु तुलसिदास गुण गावत॥

और भी (खेमटा राग में)—

मन भावे हमें काशीकी गली, विश्वनाथ पद पूजा भली॥
श्वास श्वास पर शिव दर्शन जहँ, सिद्धि विराजे थली थली॥
भैरव काल करत कोतवाली, पाप ताप कर डारैं मली॥
शोभा सदन मदन छवि वारौं, जहां बसैं हिमवान लली॥
'देबिसहाय' धन्य आनँद बन, जहँ यम की कछु नाहीं चली॥

शब्दार्थ—सो काशी =(१) ऐसी काशी पुरी, (२) सोक (शोक) = चिन्ता+असी = तलवार = चिंता की तलवार अर्थात् चिंता दूर करने वाली ॥

अर्थ (पहिला)—उस काशीपुरी का सेवन क्यों न किया जाय (अर्थात् अवश्य करना चाहिये) जो भूमि पापों की नाश करने वाली, ज्ञान की खदानि और मुक्ति की देने वाली है तथा जिस स्थान में श्री विश्वनाथ और पार्वती जी का निवास भी है।

भाव यह है कि काशीपुरी ही पापों का नाश करके ज्ञान देकर प्राणियों को मुक्ति देती है. इस के सिवाय भवानी और शंकर जी का निवास होने के कारण वहां उन की सेवा भी सुलभ है तभी तो यह कहावत प्रसिद्ध हुई कि 'काशी कबहुँ न छोड़िये विश्वनाथ दरबार'।

सूचना—गोस्वामी तुलसीदास जी ने काशी जी में निवास करते समय इस काण्ड का आरंभ किया था इसहेतु श्री विश्वनाथ जी समेत काशी जी की महिमा कहते हैं कहीं तो केवल तीर्थस्थान ही की महिमा होती है जैसे प्रयाग राज और कहीं स्थानी की महिमा होती है जैसे जगन्नाथ जी, परन्तु काशी जी में स्थान और स्थानी दोनों की महिमा है इस हेतु काशी सेवन श्रेष्ठ समझा गया है ॥

अर्थ (दूसरा)—श्री रामायण जी की कथा का सेवन क्यों न किया जाय जो पृथ्वी पर प्राणियों के पापों का नाश करने वाली, ज्ञान का भंडार तथा मुक्ति की देने वाली है ऐसे ही जहां पर पार्वती और शिवजी का सदैव वास बना रहता है और जो चिन्ता के नाश करने में तलवार का काम देती है ॥

सो०—जरत * सकल सुरवृन्द, विषम गरल जेहि पान किय।
तेहि न भजसि मतिमन्द, को कृपाल शंकर सरिस ॥१॥

शब्दार्थ—गरल = कालकूट, विष।

अर्थ—जब सम्पूर्ण देवगण (समुद्र मंथन से निकले हुए चौदह रत्नों मेंसे) कालकूट विष से जले जाते थे तब उसे अमृत के समान पान कर पान किया था। रे मूर्ख मति! तू ऐसे शंकर जी को नहीं भजता (देख तो) शिवजी के समान दयालु और कौन है? अर्थात् कोई नहीं ॥

सूचना—इस सोरठा में तुलसीदास जी रामचरित मानस के आचार्य श्री शंकर जी की वंदना के हेतु प्राणियों को चैतन्य करते हैं कि शिव समान दूसरा कोई भी रामभक्त नहीं है जैसा कहा है बालकाण्ड रामायण मेंः—

"चलत गगन भइ गिरा सुहाई। जय महेस भलिभक्ति दृढ़ाई ॥
अस प्रण तुम बिन करै को आना। राम भक्त समरथ भगवाना" ॥

---

* जरत सकल सुरवृंद, विषम गरल जेहि पान किय—
कच्छप अवतार में समुद्र मथन करते समय जो चौदह रत्न निकले थे उन में से

चौ०—*आगे चले बहुरि रघुराई। ‡ऋष्यमक पर्वत नियराई॥
तहँ रह सचिव सहित †सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सीवा॥

अर्थ—फिर रघुनाथ जी (पंपासर से) आगे बढ़े तो ऋष्यमूक नाम के पर्वत के समीप जा पहुँचे। ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव नाम का बानरराज अपने मंत्री (जाम्वान् और

एक विष भी था जिस का तेज सुर, असुर आदि कोई भी सहन न कर सक्ते थे. देवताओं ने शिव जी से प्रार्थना की कि यह तो बड़ा ही दुःखदाई हुआ. इसे क्या करें ? शिव जी कहने लगे (श्री मद्भागवत स्कं० ८ अ० ८):——

श्लोक—आसां प्राण परीप्सू नां विधेय मभयं हिमे।
एतावान्हि प्रभोरर्थो यद्दीन परिपालनं॥ ३८॥
तस्मादिदं गरं भुंजे प्रजानां स्वस्ति रस्तुमे।
तद्विषं जग्धु मारे भे प्रभाव ज्ञान्व मोदत ॥ ४१॥

अर्थात् इन अपने प्राणों की रक्षा करने के इच्छुक देवताओं को अभय देना मुझे योग्य है' कारण 'दीनों की पालना करना' यही प्रभु का कर्त्तव्य कर्म है॥ ३८॥ इसहेतु मैं इस कालकूट विष को पीता हूं जिस में मेरी प्रजा का कल्याण होवे इतना कह विष पीने को उद्यत हुए शंभु के प्रभाव को जानने हारी पार्वती जी ने भी इस का अनुमोदन किया सारांश यह है कि विष से दुःखित देवताओं की दशा देख शिव जी गरल पान कर गये. तभी तो यह परिणाम हुआ कि जिस विष ने शिव जी के कंठ को नीला कर डाला वही मानो उन का भूषण होगया और इसी हेतु शिव जी नीलकंठ नाम धारी हुए, जैसा कहा है 'यश्चकारगरे नीलं तच्च साधो विभूषणं' अर्थात् जिस ने गले को नीला कर डाला वही साधुओं का अलंकार बन गया॥

* "आगे चले" (१) इन शब्दों से गोसाईं जी ने आरण्य काण्ड का सम्बन्ध किष्किन्धा से मिलाया है अर्थात् रामचन्द्र जी पंपासर छोड़ ऋष्यमूक पर्वत की ओर बढ़े। (२) 'आगे चले' इसके कहने से कवि जी का यह अभिप्राय है कि रामचन्द्र जी पूर्ववत् क्रम से चले जैसा कहा है आरण्य काण्ड में 'आगे राम अनुज पुनि पाछे' और भी (३) 'आगे चले' इन शब्दों से साहस और धैर्य्य प्रकट कर यह दरशाते हैं कि बड़ी विपत्ति पड़ने पर भी मनुष्य को पीछे न हट कर आगे ही बढ़ना चाहिए बड़ी विपत्ति का लक्ष्य—'इहि ते कौन विपति बड़ भाई। खोयहु सीय काननहि आई॥

‡ ऋष्यमूक—हिन्दुस्थान में पंपा सरोवर के पास मतंग नाम का एक पर्वत है. उस के एक शिखर का नाम ऋष्यमूक है. यहीं पर महात्मा मतंग मुनि का आश्रम था इन्हीं मुनि जी के श्राप के कारण वालि इस पर्वत पर नहीं आ सक्ता था, और इसी हेतु सुग्रीव अपने चार मंत्रियों के साथ यहां रहता था. मतंग पर्वत के दूसरे शिखर को 'मलय' कहते हैं (देखो वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धा कांड)॥

† सुग्रीव (सुन्दर गर्दन वाला)—ब्रह्मा जी ने एक समय अपनी इच्छा से ऋक्षराज नाम का एक बड़ा बलवान बानर उत्पन्न किया. उस से सूर्य देव के सहारे से

हनुमान् आदि) के साथ रहता था. उन्हों ने ज्यों ही बड़े बलशाली (‡राम लक्ष्मण) को आते देखा ॥

चौ०–अति सभीत कह सुनु ‡ हनुमाना। पुरुष युगुल बल रूप निधाना॥

सुग्रीव नाम का बानर उत्पन्न हुआ. इसी से इसे सूर्य पुत्र, रविनंदन आदि भी कहते हैं. इस के मुख्य मंत्री हनुमान् थे. सुग्रीव में यह उत्तम गुण था कि वह बड़ी चैतन्यता से अपने मित्रों की सहायता किया करता था. और बड़ा कृतज्ञ था. यह इच्छानुसार अपना रूप पलट सक्ता था इस की स्त्री का नाम 'रुमा' था. इस की कथा विस्तारपूर्वक तो इसी काण्ड में है ॥

‡ हनुमाना–केसरी नाम बानर की अंजना नाम स्त्री से इन का जन्म हुआ था. ये मरुत देवता की प्रसन्नता से उत्पन्न हुए थे. इस हेतु इन्हें मारुति कहते हैं कथा प्रसिद्ध है कि ये जन्मते ही तीन सौ योजन छलांग मार कर सूर्य को फल समझ खाने को दौड़े इन्द्र ने इन की ठुड्डी में वज्र मारा, उस से ये मूर्च्छित हो पृथ्वी पर आगिरे. यह देख वायु क्रोधित हुए और उन्हों ने अपना चलना बन्द कर दिया। सब देवता इन्द्र समेत वहां आये और वायु की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया फिर हनुमान् को भी सावधान कर यह वरदान दिया कि आज से इन्हें मेरे वज्र की चोट न व्यापेगी. इसी समय से इन का नाम हनुमान् पड़ा. कारण हनु का अर्थ ठुड्डी है और मान का अर्थ 'वाला' है अर्थात् ठुड्डी वाला (योगरूढ़ि) दूसरे देवताओं ने ये वरदान दिये–

(१) सूर्य ने अपने प्रकाश का सौवां भाग दिया इसी से हनुमान का शरीर तेजोमय होगया जैसा कहा है–'कनक बरन तन तेज बिराजा'। इस के सिवाय सम्पूर्ण वेद और शास्त्र भी उन्हीं ने इन्हें पढ़ाये ॥

(२) वरुण ने अपने पाश और पानी से अभय कर दिया (तभी तो ये समुद्र में कूद कर सिंहिका को मार लंका की ओर निधड़क चले गये)॥

(३) यम ने अपने दंड और मृत्यु से अवध्य कर दिया (तभी तो ये अमर हुए और सीता जी ने भी इसी को पुष्ट किया था कि 'अजरअमर गुण निधि सुत होहू')

(४) कुवेर ने कठिन गदा की चोट से रक्षित कर दिया

(५) शिव जी ने यह वरदान दिया कि त्रिशूल आदि मेरे सब अस्त्र शस्त्र तुम्हें बाधा न करेंगे ॥

(६) विश्वकर्मा ने तो 'मेरे बनाये हुए सभी हथियारों से तुम्हें कभी चोट तक न लगेगी' यह वरदान दिया (इसी से ये संग्राम में निधड़क रहा करते थे)॥

(७) ब्रह्मा ने ब्रह्म दण्ड से अवध्य किया (तभी तो मेघनाद के चलाये हुए ब्रह्मास्त्र से ये मरे नहीं थे केवल मूर्च्छित हुए थे) इस के सिवाय ब्रह्मा जी ने इन को

धरि * बटु रूप देख तैं जाई । कहेसि + मोहि निज सैन बुझाई ॥

अजेय, चिरंजीवी, बलवान् शुचि, बुद्धिवान्, मित्र रक्षक शत्रुनाशक, इच्छारूपधारी, त्रिलोकगामी और पूज्य भी बना दिया सम्पूर्ण वरदानों को पा कपि के चंचल स्वभाव तथा लड़कबुद्धि से ये लड़कपन में ऋषि मुनियों को सताने लगे ऋषि मुनि कुछ दिन तो वरदानों का प्रभाव समझ चुप रहे परन्तु विशेष त्रास पाने से उन्होंने ऐसा श्राप दिया ॥

चौ०—पवन पुत्र बल विस्मृत रहई । संतत सरल चित्त निर बहई ॥
जब कोऊ बल सुरति करावै । तबहिं बीरता कपितनु आवै ॥

लंका जाते समय जब जाम्बवान् ने इन्हें इन के बल की याद दिलाई थी तब तो ये तुरंत ही सहजोर हो उठे और लंका में बात की बात में जा पहुंचे ।

ये बड़े होने पर बड़े पराक्रमी हुए तभी तो इन की मित्रता सुग्रीव से हुई तभी से ये उन के पास रहने लगे और अपनी बुद्धि, चतुराई और प्रमाणिकता के कारण सुग्रीव के मंत्रियों में श्रेष्ठ समझे जाते थे, इन्होंने सुग्रीव की मित्रता रामचन्द्र जी से कराई और सीता की खबर ला रामचन्द्र जी को सुनाई. फिर लंका में लड़ाई के समय बहुत पराक्रम दिखाया. लक्ष्मण को शक्ति के घाव से अच्छा कराया और रामचन्द्र जी के साथ अयोध्या में आकर बने रहे. कहते हैं कि रामचन्द्र जी के ये बड़े भक्त हैं ये उन की आज्ञा से अभी तक लोगों को हिमालय पर्वत की शिखर गंधमादन पर राम कथा सुनाया करते हैं. ये वेदों का अर्थ समझने में बहुत प्रवीण थे. शास्त्रों में भी इन का पूर्ण अधिकार था, व्याकरण में तो इन्होंने बड़ी कुशलता दिखाई थी, यहां तक कि लोग इनको नवम् वैयाकरण समझते थे, रामचन्द्र जी ने किष्किन्धा पर की पहिली ही भेंट में लक्ष्मण से इन की शुद्ध वाणी, वाक् चातुरी और मधुर भाषण की प्रशंसा की थी, लेख है कि महादेव जी अपने कुछ अंश से हनुमान् रूप धर रामचन्द्र जी की सेवा में रहा करते थे यथा—

दोहा—पुनि सुखेन वर वरुण ले, शंभु अंश हनुमान ।
धीर वीर तिहुँ लोक में, जासम कोउ न आन ॥

* 'बटु रूप' धारण करने के कई कारण हैं (१) मनुष्य रूप धारण कर मनुष्यों से मिलना उचित था (२) ब्रह्मचारी अवध्य है इस हेतु यद्यपि युगुल पुरुष बलवान् हैं तौभी उन से डर न होगा. (३) विद्यार्थी चपल स्वभाव के होते हैं इस हेतु वे अपना सन्देह मिटाने के हेतु चाहे जैसे प्रश्न कर सक्ते हैं (४) मनुष्य रूप से बानरी संकेत करने पर वह संकेत केवल सुग्रीव ही समझ सकेंगे इत्यादि ॥

‡ 'कहेसि मोहि निज सैन बुझाई' का पाठान्तर 'कहसु जानि जिय सैन बुझाई' है ॥

शब्दार्थ—बटु = ब्रह्मचारी, विद्यार्थी। निजसैन = अपना संकेत अर्थात् बानरी संकेत॥

अर्थ—सुग्रीव बहुत ही भयभीत हो बोले, हे हनुमान् सुनो। (आते हुए) ये दोनों पुरुष बल और रूप में परिपूर्ण हैं। तुम ब्रह्मचारी का रूप धारण करके जाओ और जांच करो फिर मुझे बानरी संकेत से समझा देना।

सूचना—'अति सभीत' इसलिये कहा कि सुग्रीव वालि के डर से भयभीत तो था ही, जब इस ने दो अति बलवान् पुरुषों को निश्शंक आते हुए देखा तो अति सभीत हुआ॥

चौ०—पठये वालि होहि मन मैला। भागउँ तुरत *तजउं यह शैला॥
‡ विप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ। * माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥

* तजउं यह शैला—इस में यह शंका होती है कि सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत को छोड़ कहां जाता, कारण उसका बचाव तो उसी पर्वत पर था जैसा आगे कहा है—'यहां शापवश आवत नाहीं। तदपि सभीत रहौं मन माहीं' ॥ इस का समाधान यह है कि किष्किन्धा पर आने का डर तो वालि को था न कि उस के भेजे हुए किसी दूसरे योद्धा को. इसहेतु सुग्रीव ने विचारा कि इस समय कहीं दूसरी जगह भाग जाने से इन आते हुए शत्रुओं से बच जावेंगे॥

‡ विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ—विप्ररूप धारण करने का कारण—
चौ०—करि विचार भिक्षुक तन धारो। बानर तन बिच दोष निहारो॥
पशु योनी बिलोकि हैं जोई। मुदित होय बोलैं नहिं सोई॥
बिप्ररूप जो मोहि निहार। पूछहि अधिक दया उर धारैं॥
इहि कारण कपि भेष छिपायो। जाय प्रणाम कीन्ह शिर नायो॥
(राम रत्नाकर रामायण से)

और भी जैसा कि श्री मद्भागवत् में लिखा है यथा—

श्लोक—वपनं द्रविणा दानंस्थानान्निर्यापनं तथा।
एषहि ब्रह्म बंधू नां नान्यो दंडोस्ति दैहिक:॥

अर्थात् शिर मुंड़वा डालना, धन छीन लेना अथवा स्थान से निकाल देना ये ही दंड ब्राह्मणों को (यदि अपराधी ठहरैं तो) उचित है और दूसरा देह दंड उचित नहीं॥

* माथ नाइ पूछत अस भयऊ—बहुधा लोग यह कह बैठते हैं कि विप्ररूप धारी

अर्थ—(पहिली लकीर का) यदि इन्हें मन मलीन वालि ने भेजा हो तो मैं जल्दी से भाग कर इस पर्वत को छोड़ जाऊं।

दूसरा अर्थ—यदि इन्हें वालि ने भेजा हो तो इन का मन मैला होगा उसे समझ मुझे संकेत करना तो मैं भाग कर इस पर्वत से चला जाऊंगा।

तीसरा अर्थ—यदि इन्हें वालि ने भेजा हो तो तुम अपना मन मैला कर लेना अर्थात् अपनी चेष्टा उदास कर लेना उसे देखते ही मैं भाग जाऊंगा।

अर्थ—(दूसरी लकीर का) ब्राह्मण का रूप धारण कर हनुमान् जी वहां गये और सीस नवाकर यों प्रश्न करने लगे।

हनुमान् जी ने क्षत्रीरूपधारी रामचन्द्र जी को सीस क्यों नवाया? उस का समाधान यह है कि तेजस्वी प्रताप शाली महात्माओं का प्रभाव साधारण पुरुषों पर ऐसा पड़ता है कि वे बिना जाने ही उन्हें उत्थापन दे देते हैं अथवा प्रणाम कर लेते हैं जैसा (१) श्रुति में कहा है—

ऊर्ध्वं प्राणाह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आगते।
अभ्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते॥

अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्य के आने से युवा पुरुष के प्राण ही मानो ऊपर को उठते हैं सो उसे यह बुद्धि उत्पन्न होती है कि यदि वह खुद बैठा हो तो खड़े होकर उसे मान देवें और यदि खड़ा हो तो उसे शिर झुकावे, जब वह उत्थापन और नमन कर चुकता है तब उस का प्राण या चित्त ठिकाने पर आता है. इसहेतु हनुमान् जी ने बलरूपशाली राम लक्ष्मण जी को शिर झुकाया तो स्वाभाविक ही था॥

(२) और रामरत्नाकर रामायण में भी यों स्पष्ट कर दिया है कि—

चौ०—जे जग तेजवन्त प्रभु कोई। कपट रूप तहँ नमत लखोई॥
मधुर वचन कह कीन्ह प्रशंसा। कहिय आप केहि कुल अवतंसा॥

(३) कोई कोई पंडित लोग कहते हैं कि हनुमान् जी बनावटी रूप में ब्राह्मण बने थे परन्तु अवतारिक रूप तो बन्दर का था इसहेतु नररूप धारी रामचन्द्र जी के प्रभाव से बनावटी रूप बिसर अपने को शुद्धरूप बन्दर जान वन्दना की जैसा आगे की चौपाई में खुलासा हो जायगा. जब रामचन्द्र जी ने उन से कहा था कि 'हम पितु वचन मान बन आये' अर्थात् हे बने हुए हनुमान् हमें पितु जान, हमारे वचनों को प्रमाण समझो और इसी के सुनने से फिर हनुमान् जी ने बन्दर रूप धारण कर उन्हें प्रणाम किया और तब प्रभु ने उन्हें अपने हृदय से लगाया था इस के पहिले नहीं॥

(४) और भी—विनय दोहावली में लिखा है कि—

दोहा—ब्रह्मचर्य हनुमान हैं बानप्रस्थ रघुनाथ।
जेठो आश्रम जानि के तासे नायो माथ॥

चौ०—+को तुम श्यामल गौर शरीरा । क्षत्रीरूप फिरहु बन वीरा ॥
कठिनभूमि कोमलपदगामी । कवन हेतु बन विचरहु स्वामी ॥

शब्दार्थ—कोमल पद गामी = इस शब्द में यह विचित्रता है कि पहिले दो शब्द कोमल पद = कोमल चरण और पद गामी = पैदल चलने वाले, तीनों का अर्थ मृदु चरणों से पैदल चलने वाले ॥

अर्थ—आप (दोनों) श्यामले और गोरे अंग वाले कौन हौ ? जो क्षत्रीरूप धारण किये हुए, वीर वृत्ति से बन में फिर रहे हौ । यहां की धरती तो अति कठोर है और हे प्रभु ! आप कोमल चरणों से उपनहे किस हेतु इस बन में घूम रहे हौ ॥

चौ०—मृदुल मनोहर सुन्दर गाता । सहत दुसह बन आतप वाता ॥
की तुम तीन देव महँ कोऊ । ‡नर नारायण की तुम दोऊ ॥

अर्थ—आप के शरीर कोमल मनोहर और सुन्दर हैं आप लोग जङ्गल की असह्य धूप और पवन को सह रहे हौ । क्या आप ? तीन देव (ब्रह्मा विष्णु महेश) में से कोई हैं अथवा क्या आप दोनों नर और नारायण हैं ?

+ को तुम श्यामल गौर शरीरा—

कवित्त—कर धनु तीर श्याम गौरव शरीर धरे तन मुनि चीर धीर वीर बल भौन हौ ।
शोभा अभिराम नव नीरज ललाम दृग काम छबिधाम इत कीन्हों कहँ गौन हौ ॥
सीस जटाजूट मुख चंद छबि लूट 'बंदि' मंद मंद हास सुबिलास सुख दौन हौ ।
करत सनाथ बन नाथन के नाथ यह पूछौं जोरि हाथ जगनाथ तुम कौन हौ ॥

‡ नर नारायण—नर और नारायण ये नाम दो प्राचीन ऋषियों के हैं जिन की उत्पत्ति धर्म और अहिंसा से कही गई है. वामन पुराण में कथा है कि इन की तपस्या और धर्माचरण से देवता शंकित हुए. इन्द्र ने इन की तपस्या भंग करने के लिये अप्सराओं को भेजा. नारायण ने एक फूल उठा कर अपनी जंघा पर रक्खा तो ऋषि जी की जंघा से

दोहा—जग कारण तारण भवहिं, भंजन धरणीभार।
की तुम अखिलभुवनपति, लीन्ह मनुज अवतार ॥ २ ॥

अर्थ—अथवा आप सब संसार के स्वामी, जगत के कर्त्ता जग से छुड़ाने वाले पृथ्वी का भार उतारने के हेतु मनुष्य रूप धारण कर अवतरे हौ ॥

चौ०—†कोशलेश दशरथ के जाये। हम पितु वचन मानि बन आये ॥

अर्थ—कोशलाधि पति दशरथ जी के पुत्र हम लोग अपने पिता की आज्ञा मान वन में आये हैं।

दूसरा अर्थ—कोशलेश = सम्पूर्ण कुशल प्राणियों में श्रेष्ठ, दशरथ अर्थात् दश = पक्षी विशेष रथ है जिन का ऐसे (गरुड़गामी) विष्णु जी के जाये अर्थात् उन के अवतार। सारांश—सम्पूर्ण कुशल प्राणियों के स्वामी गरुड़गामी श्री विष्णु जी के हम अवतार हैं (देखो अयोध्या काण्ड की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० १०९, ११० में 'पिता राम सब भाँति सनेही पर)।

इसहेतु (पितु) अर्थात् सब के आदि कारण हैं सो हे ! (बन आये) अर्थात् कपट से बटु वेषधारी हनुमान् (वचन मान) हमारे वचनों का विश्वास करो। भाव यह कि श्री रामचन्द्र जी ने अपने को जगत का कारण बता यह भी दरसा दिया है कि हम तुम्हारे बनावटी रूप को पहिचान गये। और इस तरह से उन के अंतिम तीन प्रश्नों का उत्तर एक ही में गुप्त रूप से सूचित किया है ॥

चौ०—नाम राम लक्ष्मण दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥

अर्थ—हम लोगों के नाम क्रम से राम और लक्ष्मण हैं हम दोनों भाई हैं और हमारे साथ एक कोमलांगी सुन्दर स्त्री भी थी ॥

एक अप्सरा उत्पन्न हुई जिस का सौंदर्य स्वर्गीय अप्सराओं से बहुत बढ़ चढ़ कर था तब तो इन्द्र की भेजी अप्सरायें लज्जित हो अपना सा मुँह लिये लौट गईं. नारायण ने उसे भी उन के साथ इन्द्र के पास भेज दिया. इस अप्सरा का नाम उर्वशी हुआ, क्योंकि वह नारायण की उरु (अर्थात् जंघा) से उत्पन्न हुई थी. नारायण ने अनेक धर्म कथायें अनेक बार बड़े बड़े ऋषियों को सुनाईं.

† कोशलेश दशरथ के जाये———इस अर्धाली के ऊपर किसी २ रामायण में नीचे लिखी अर्धाली क्षेपक है—

हँस बोले रघुवंश कुमारा। विधि कर लिखा को मेटन हारा ॥

सूचना—यह उत्तर ऊपर के इस प्रश्न का है (१) 'को तुम श्यामल गौर शरीरा'। और जो प्रश्न किया था कि (२) 'क्षत्री रूप फिरहु बन वीरा' इस का उत्तर यह है कि (३) 'हम पितु वचन मानि बन आये'॥

चौ०—+इहाँ हरी निशिचर वैदेही। खोजत विप्र फिरहिं हम तेही॥

अन्वय—हे विप्र! निशिचर वैदेही हरी हम तेही इहाँ खोजत फिरहिं।

अर्थ—हे विप्र! किसी राक्षस ने सीता का हरण कर लिया है हम उन्हें यहां पर ढूंढ़ते फिरते हैं॥

सूचना—हनुमान् जी के तीसरे प्रश्न, अर्थात् 'कवन हेतु बन विचरहु स्वामी' 'का उत्तर यह है कि इहां हरी निशिचर वैदेही'॥

चौ०—आपन * चरित कहा हम गाई। कहहु † विप्र निज कथा बुझाई॥

अर्थ—हमने अपनी कथा कह सुनाई, हे विप्र! तुम अपनी वार्त्ता समझाकर कहो।

+ 'इहाँ हरी निशिचर वैदेही'—यदि इस का अर्थ ऐसा किया जावे कि यहां पर किसी राक्षस ने सीता जी का हरण कर लिया है तो असंबद्ध होता है कारण—सीता जी का हरण तो पंचवटी में हुआ था और यह तो किष्किन्धा की वार्त्ता है॥

* आपन चरित कहा हम गाई—यहां पर कोई २ लोग यह शंका कर बैठते हैं कि हनुमान् जी के अंतिम तीन प्रश्न अर्थात् (४) 'की तुम तीन देव महँ कोऊ' (५) 'नर नारायण की तुम दोऊ' और (६) 'जग कारण तारण भवहिं इत्यादि, इन प्रश्नों का उत्तर श्री रामचन्द्र जी ने क्यों नहीं दिया सो देखने में स्पष्ट रूप से उत्तर तो नहीं दिया गया क्योंकि अवतार का भेद खुल जाता। परन्तु 'कोशलेश दशरथ के जाये' इत्यादि में तीनों प्रश्नों का एक ही उत्तर गुप्त रीति से दरसा दिया है देखो 'कोशलेश दशरथ के जाये' का दूसरा अर्थ॥

† कहहु विप्र निज कथा बुझाई—श्री रामचन्द्र जी का प्रश्न तथा हनुमान् का उत्तर दोनों हृदय राम कवि कृत हनुमन्नाटक के नीचे लिखे हुए सवैया में देखिये—

हम तो अपनी सब बात कही तुम सो तुम हूं हम सो न कहो।
कपि क्यों सकुचात डरात से हो केहि कारण ते इहि भांति रहो॥
नाउँ हनू कपि राज सुग्रीवहि आन मिलाउँ जो बाँह गहो।
निज बीर छिनाइलइ तिय राज गरीब निवाज ही लाज बहो॥

चौ०-प्रभु पहिचान ‡ परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना ॥
पुलकित तनु मुख आव न वचना। देखत रुचिर भेष कै रचना ॥

अर्थ—(महादेव जी कहते हैं कि) हे पार्वती ! रामचन्द्र जी को अपना प्रभु पहिचान (हनुमान जी ने) उन के चरण गहे उस समय का आनंद कहा नहीं जासक्ता। शरीर रोमांचित होगया मुख से शब्द नहीं निकलते थे वे तो राम रूप की शोभा को निहार रहे थे ॥

चौ०-पुनि धीरज धरि अस्तुति + कीन्हा। हर्ष हृदय निज नाथहिं चीन्हा ॥
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम कस पूछहु नर की नाईं ॥

अर्थ—फिर धीरज के साथ प्रार्थना की और हृदय में इस बात की प्रसन्नता हुई कि मैंने अपने स्वामी को पहिचान लिया (और बोले) हे स्वामी ! मैं ने जो आप से प्रश्न किये सो मुझे उचित ही था (कारण मैं मायावश हूं) परन्तु आप किस कारण मुझ से मनुष्य की नाईं पूछते हो (आप तो माया के स्वामी हो) ॥

चौ०-तव मायावश फिरउँ भुलाना। तातें मैं नहिं प्रभु पहिचाना ॥

---

‡ प्रभु पहिचान.......................इसी पंक्ति के ऊपर किसी २ रामायण में यह अर्धालीक्षेपक है "तब हनुमंत हृदय अस जाना। ए तौ प्रगट राम भगवाना ॥" "प्रभु पहिचान परे गहि चरना" यहां पर यह शंका हो सक्ती है कि रामचन्द्र जी ने जो कुछ हनुमान् से कहा था, उस में कोई बात ऐसी नहीं है जिस से स्पष्ट समझ पड़े कि वे परमेश्वर का अवतार हैं फिर हनुमान् ने कैसे जाना. समाधान—(१) हनुमान् शंकरजी के अवतार हैं, उन्हों ने सब देवताओं और गौ रूप पृथ्वी के साथ आकाशवाणी सुनी थी कि हम दशरथ और कौशल्या के यहां अवतार धारण करेंगे इसहेतु दशरथ के पुत्र जिन की स्त्री का हरण हुआ है इन शब्दों को सुन कर पहचान गये. (देखो बालकाण्ड में आकाशवाणी के शब्द) ॥

(२) "कोशलेश दशरथ के जाये" आदि शब्दों में गूढ़ आशय भरा है जिन पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि ये परमेश्वर के अवतार हैं (देखो 'कोशलेश दशरथ के जाये' आदि पर श्रीविनायकी टीका पृ० १२) ॥

+ 'अस्तुति' इस का शुद्ध रूप 'स्तुति' है. देखो आरण्यकाण्ड श्री विनायकी टीका की टिप्पणी 'मुनिवर परमप्रवीण जोरि पाणि अस्तुति करत' पर ॥

अर्थ—मैं आप की माया में पड़कर ऐसा भूला रहता हूं कि मैं ने आप को नहीं पहिचाना ॥

दोहा—एक मन्द मैं मोहवश, कुटिलहृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीनबन्धु भगवान ॥ ३ ॥

अर्थ—एक तो मैं मूर्ख मोह के वश, कपटी तथा अज्ञानी हूँ और फिर हे दीनों पर दया करने वाले परमेश्वर ! आप भी मुझे भूल गये ॥

चौ०—यदपि नाथ बहु अवगुण मोरे। सेवक प्रभुहिं परै नहिं भोरे।
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा ॥

शब्दार्थ—परै नहिं भोरे = भूल करके भी नहीं त्यागे।

अर्थ—हे स्वामी ! यद्यपि मुझ में बहुत से दुर्गुण हैं तौ भी सेवक को स्वामी भूल करके भी नहीं त्यागे। हे प्रभु ! सब प्राणी आप की माया के वश में हैं वे आप ही की कृपा से छुटकारा पा सक्ते हैं ॥

चौ०—ता पर मैं रघुवीर दोहाई। जानउँ नहिँ कछु भजन उपाई ॥
सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ अशोच बनइ प्रभु पोसे ॥

शब्दार्थ—पोसे = पोषण किये, पाले।

अर्थ—इतने पर भी मैं आपकी सौगन्ध खाकर कहता हूं कि मैं भजन का कोई भी उपाय नहीं जानता। हे प्रभु ! सेवक तो स्वामी के भरोसे और पुत्र माता के भरोसे निधड़क रहता है सो उन्हें उन की पालना करनी ही पड़ती है ॥

चौ०—अस कहि परेउ चरण अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥
तब रघुपति † उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींच जुड़ावा ॥

---

† तब रघुपति उठाय उर लावा—पहिले कहे अनुसार स्पष्ट है कि रामचन्द्र जी ने हनुमान् जी को तब तक हृदय से न लगाया जब तक वे कपट भषधारी बटु बने रहे। कपट रहित बानर रूप प्रकट होते ही रामचन्द्र जी ने तुरन्त उन्हें अंगीकार कर लिया. इसी प्रकार निष्कपट प्रेम पर प्रभु की परम प्रीति रहती है न कि छल युक्त प्रेम पर जैसा कहा है बिहारी की सतसई में—

दोहा—तौ लगि या मन सदन में, हरि आवहिं केहि बाट।
निपट विकट जब लगि जुटे, खुटहि न कपट कपाट ॥

अर्थ—इतना कह ज्योंही हनुमान जी व्याकुल हो उनके चरणों में गिरे त्यों ही उनका बानरी रूप प्रकट हो गया और हृदय प्रेम से भर गया । तब रामचन्द्र जी ने उठाकर उन्हें अपने हृदय से लगा लिया और अपने नेत्रों के आँसुओं से उन के शरीर की तपन बुझाई ॥

चौ०—सुनु कपि जिय जनि मानेसि ऊना । ‡ तैं मम प्रिय लछमण तें दूना ॥
समदर्शी मोहि कह सब कोऊ । सेवकप्रिय अनन्यगति होऊ ॥

शब्दार्थ—अनन्य (अन् = अन्य = दूसरा) = दूसरा नहीं है बराबर जिस के, परम भक्त (इस की परिभाषा नीचे के दोहे में है) । दूना = (१) दोगुना (२) दू = दो + न = नहीं अर्थात् जो दो न हों याने दोनों तुल्य. लछमण तें = (१) लछमण के कारण (२) लछमण और तुम ॥

अर्थ—हे हनुमान् सुनो तुम अपने हृदय में कुछ अन्यथा न समझो तुम तो मुझे लछमण जी के कारण दूने प्यारे हो ॥

दूसरा अर्थ—हे हनुमान् जी सुनो ! तुम अपने हृदय में कुछ दूसरा विचार न लाओ, तुम तो मेरे प्यारे हो, कारण (लछमण तें दूना) अर्थात् लछमण और तुम दो नहीं हो ॥

सारांश—लछमण और तुम में मैं कुछ भेद नहीं मानता भाव यह कि तुम दोनों समान प्यारे हो ॥

यद्यपि मुझे सब लोग 'समदर्शी' कहते हैं (अर्थात् लोग कहते हैं कि मैं सब को समान समझता हूं) तो भी जो सेवक मुझ में अटल प्रीति रखता है उसपर मेरा विशेष प्यार रहता है ॥

दोहा—सो अनन्य अस जाहि के, मति न टरै हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचरहि, रूप राशि भगवंत ॥ ४ ॥

‡ तैं मम प्रिय लछमण तें दूना—लछमण तें दूना कहने का कुछ यह अभिप्राय नहीं कि हनुमान् लछमण जी से दूने प्यारे हों परन्तु यह अभिप्राय है कि 'लछमण तें' अर्थात लछमण के कारण दूने प्यारे हैं अर्थात हनुमान ने श्री रामचन्द्र और लछमण दोनों की सेवकाई तो की है परन्तु लछमण जी की विशेष सेवकाई शक्ति लगने पर हनुमान् के द्वारा होगी । इस विचार से उन्हें लछमण के कारण दुगुना प्रिय कहा ॥

अर्थ—राम जी बोले हे हनुमान् ! वही अनन्य भक्त है जिस के चित्त से यह विचार कभी न टरै कि मैं तो सेवक हूँ और अनन्तरूपधारी चल और अचल जीवों में व्याप्त (षडैश्वर्य शाली) भगवान् मेरे स्वामी हैं। भाव यह कि अनन्य भक्त वे हैं जो ईश्वर को 'सेवा किये जाने के योग्य' और अपने को 'सेवक' समझते हैं और कोई तीसरा उन के विचार में नहीं रहता उन का भाव सेव्य सेवक का रहता है ॥

चौ०—देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदय हर्ष * बीतें सब शूला ॥
नाथ शैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई ॥

अर्थ—जब हनुमान् जी ने रामचन्द्र जी का झुकाव अपनी ओर देखा तो उन का हृदय प्रसन्नता से भरगया और सब दुःख दूर हुए (हनुमान् जी ने कहा) हे स्वामी ! इस पर्वत पर बानरों का राजा सुग्रीव रहता है वह आप का सेवक है ॥

चौ०—तेहि सन नाथ + मइत्री कीजै। दीन जान तेहि अभय करीजै ॥
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि ॥

अर्थ—हे स्वामी ! आप उस से मित्रता कीजिये और दुःखी जान उस का भय मिटाइये। वह सीता जी का पता लगावेगा कारण वह अगणित बानरों को प्रत्येक दिशा में भेजेगा ॥

चौ०—इहि विधि सकल कथा समझाई। लिये दोउ जन पीठ चढ़ाई ॥
जब सुग्रीव राम कहँ देखा। अतिशय जन्म धन्य करि लेखा ॥

अर्थ—इस प्रकार (सुग्रीव की) सब कथा समझाकर कही और फिर दोनों भाइयों को अपने कंधों पर बिठला लिया। जब सुग्रीव ने इस प्रकार रामचन्द्र जी को (हनुमान् जी के कंधे पर चढ़कर आते हुए) देखा तो उस ने मन में विचारा कि मेरा जन्म अब यथार्थ में सफल हुआ (अर्थात् उस ने जान लिया कि ये दोनों योद्धा मेरे सहायक होते दीखते हैं इन के द्वारा मैं अवश्य वालि की त्रास से छुटकारा पाऊंगा) ॥

---

* बीते सब शूला—कहा है—'किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्री निकेतने' अर्थात् रमानिवास श्री भगवान् के प्रसन्न होने पर कौन सी बात ऐसी रहती है जो न मिल सके सारांश—सम्पूर्ण मनोकामनायें सिद्ध हो जाती हैं ॥

+ तेहि सन नाथ मइत्री कीजै—'नतरत्यापदं कश्चित, योऽत्रमित्र विवर्जितः' अर्थात् जो इस संसार में मित्र रहित है वह बहुधा आपत्ति से पार नहीं हो सका।

और भी श्लोक—न पूर्णोऽस्मीति मन्येत मित्रतः धर्मतोऽर्थत.

अर्थात् मनुष्य को चाहिये कि 'मैं मिताई से और धर्म से परिपूर्ण होचुका' ऐसा कभी न सोचे।

चौ०—सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेटेउ अनुज सहित रघुनाथा॥
कपि कर मन विचार इहि ‡ रीती। करिहहिं विधि मो सन ये प्रीती॥

अर्थ—सुग्रीव रामचन्द्र जी के चरणों में शीस नवाकर आदर सहित मिले फिर रामचन्द्र जी ने भी लक्ष्मण सहित भेंट की। कपि के मन में इस प्रकार के विचार उठते थे कि हे विधाता! क्या ये मुझ से प्रीति करेंगे?

दोहा—तब हनुमंत उभय दिशी, कहि सब कथा बुझाइ।
† पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥ ५॥

शब्दार्थ—पावक = पवित्र करने वाला, अग्नि॥

अर्थ—तब हनुमान् जी ने दोनों ओर की कथा समझा कर कही (अर्थात् रामचन्द्र जी को सीता की खोज में सहायता देने के लिये सुग्रीव से कहा और सुग्रीव को उस का राज्य तथा स्त्री प्राप्त करा देने में रामचन्द्र जी से सहायता मांगी) और अग्नि को साक्षी कर दोनों के बीच में दृढ़ प्रीति करा दी॥

चौ०—कीन्ह प्रीति कछु बीच न राखा। लक्ष्मण राम चरित सब भाखा॥
कह सुग्रीव × नयन भरि वारी। मिलिहि नाथ मिथिलेश कुमारी॥

---

‡ 'रीती' का पाठान्तर 'नीती' भी है।

† पावक साखी देइ करि—अग्नि को साक्षी करने के पंडित लोग कई कारण बतलाते हैं जैसा श्री गीता जी के १५ वें अध्याय में लिखा है।

श्लोक—अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधं॥ १४॥

अर्थात् (श्री कृष्ण जी कहते हैं कि हे अर्जुन!) मैं ही जठराग्नि होकर प्राणियों के शरीर में प्रवेश करके प्राण और अपान संयुक्त हो भोज्य, भक्ष्य, चोष्य, लेह्य इन चार प्रकार के भोजनों को पचाता हूं। अभिप्राय यह है कि अग्नि सब के शरीर में है इसहेतु उसे साक्षी ठहराया।

और भी—

विवाह आदि शुभकर्मों में भी लोग अग्नि को साक्षी करते हैं इसहेतु परस्पर की दृढ़ मैत्री में भी अग्नि को साक्षी करना उचित ही था॥

× कह सुग्रीव नयन भरि वारी—सुग्रीव के नेत्रों में आंसू इसलिये भर आये कि (१) सीता हरण सुन उसे भी अपनी स्त्री का हरण स्मरण आगया इसहेतु अपने सम दुःखी मित्र को देख विशेष दुःखी हो उठा जैसा कुमार संभव में कहा है—

'स्वजनस्यहि दुःखमग्रतो, विवृतद्वार मिवोप जायते' (अर्थात्)

अर्थ—इस प्रकार से पक्की प्रीति की कि कुछ भेद न रहा, तब लक्ष्मण जी ने रामचन्द्र जी की लीला (राज्य त्याग, बन आगमन, खरदूषण आदि बध, सीता हरण, जटायु शबरी आदि का मोक्ष) कह सुनाया। जिसे सुनते ही सुग्रीव के नेत्रों में आंसू भर आये, वह बोला कि हे स्वामी ! सीता जी मिल जावेंगी ॥

चौ०—* मंत्रिन्ह सहित इहाँ इक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा ॥
गगनपंथ देखी मैं जाता। परवश परी बहुत बिलखाता ॥

अर्थ—एक समय मैं अपने मंत्रियों के साथ यहां बैठा हुआ कुछ विचार बांध रहा था। कि मैं ने (उन को) दूसरे के वश में आकाश मार्ग से बहुत कुछ विलाप करती हुई जातीं देखीं ॥

चौ०—राम राम हा राम पुकारी। हमहिं देखि दीन्हेउ पट डारी ॥
‡ माँगा राम तुरत सो दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ॥

अर्थात् अपने सुहृद् के आगे दुःख मानो किवाड़ खोल कर निकल आता है। भाव यह कि उस समय पर दुःख विशेष बढ़ जाता है (२) सन्मित्र होने के कारण सुग्रीव अपने मित्र के दुःख से भी दुःखी हो पड़े जैसा आगे रामचन्द्र जी ने कहा है 'जे न मित्र दुख होहिं दुखारी' इत्यादि (३) सुग्रीव को उस समय का स्मरण आगया जब कि सीता जी विलाप करती हुईं आकाश मार्ग से जारहीं थीं।

* मंत्रिन्ह सहित..........सुग्रीव के साथ जो मंत्री रहा करते थे उन के नाम ये हैं—(१) हनुमान् (२) तार (३) नील और (४) नल।

‡ माँगा राम तुरत सो दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा—

सुग्रीव के दिये हुये पट और आभूषण को देख श्री रामचन्द्र जी ने दुःखित हो लक्ष्मण जी से पहिचानने को कहा उस के उत्तर में लक्ष्मण जी ने जो कहा सो भली भाँति हृदयरामकवि कृत हनुमन्नाटक तथा संस्कृत हनुमन्नाटक की नीचे लिखी कविताओं से प्रकट होगा—

सवैया—देख विषाद कियो रघुबीर लगाइ लिये छतियां पछिताहीं।
बारि भरे दृग यों छबि है जनु मीन सरोवर में झलकाहीं ॥
जानकि अंगनते बिछुरे मनो मूक भये ;कहि यों बिलखाहीं।
बीर बिचार कहो तुम हूं सिय के एई भूषण होहिं कि नाहीं ॥

कवित्त-जानकी को मुख न विलोक्यो ताते कुंडल न जानत हौं बीर पाँव छूवों रघुराव के।
हाथ जो निहारे नैन फूटियो हमारे ताते कंकन न देखे बोल कह्यो सत भाव के ॥
(पाँइन)

अर्थ—(उन का बिलाप सुन दुःख से) मैं यों कह उठा कि 'राम राम हरे राम' इस पर मुझे देख उन्हों ने अपना एक वस्त्र डाल दिया ॥

दूसरा अर्थ—उन्हों ने हमारी ओर देख ऐसा कहकर कि 'राम राम हा राम' अपना एक वस्त्र डाल दिया (कदाचित्) इस अभिप्राय से कि इस वस्त्र के द्वारा रामचन्द्र जी को पता लग जायगा (आरण्य काण्ड में 'गिरि पर बैठे कपिन निहारी' इत्यादि पर श्री विनायकी टीका देखो) रामचन्द्र जी ने कहा लाओ तो सही, सुग्रीव ने उसे शीघ्र ला दिया, वस्त्र को हृदय से लगा श्री रघुनाथ जी ने अधिक सोच किया ॥

चौ०—कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा ॥
सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई ॥

अर्थ—सुग्रीव बोले हे रामचन्द्र जी! शोक त्यागो और चित्त में धीरज धारण करो। मैं सब प्रकार आप की सेवा करूंगा कि जिस से सीता जी आमिलें ॥

दो०—× सखा वचन सुनि हरषऊ, कृपासिंधु बलसीव।
कारण कवने बसहु बन, मोहि कहहु सुग्रीव ॥ ६ ॥

पाँइन के परिवे को जाते दास लछिमन यातें पहिचानत हैं भूषण जे पाँव के।
बिछुआ हैं एई अरु झाँझन हैं एई जुग नूपुर हैं तेई राम जानत जड़ाव के ॥

और भी हनुमन्नाटक से—

श्लोक—कुंडले नैव जानामि नैव जानामि कंकणे।
नूपुरावेव जानामि नित्यं पादाभि वंदनात् ॥

अर्थात् (लक्ष्मण कहने लगे) न तो मैं कुंडलों को जानता हूं और न कंकणों को पहिचानता हूं हां! नित्य चरणारविन्दों की वंदना करने से नूपुरों को अवश्य पहिचानता हूं।

इसी से मिलाने के हेतु कदाचित् तीन लकीरों का एक क्षेपक भी किसी २ प्रति में छपा है यथा—

चौपाई—कह प्रभु लक्ष्मण सों यौं बाता। पहिचानत पट भूषण ताता ॥
हाथ जोरि लक्ष्मण ये बोले। रघुनायक से वचन अमोले ॥
पग भूषण मैं सकत चिन्हारी। ऊपर कबहुँ न सीय निहारी ॥

× सखा वचन सुनि हरषऊ............इस दोहे के नीचे ३६ लकीरों का सुग्रीव की उत्पत्ति विषय एक बड़ा क्षेपक है सो पुरौनी में मिलेगा ॥

सखा—'समानः ख्यायते इति सखा' अर्थात् जो बराबरी का कहा जाता है. सखा के पर्याय वाची कई शब्द हैं परन्तु उन में मित्र शब्द मुख्य है, बारीकी के साथ

शब्दार्थ—बल सींव = बल की मर्य्यादा अर्थात् बड़े बलवान् ॥

अर्थ—दयासागर बड़े बलवान् श्री रामचन्द्र जी सुग्रीव के कथन को सुन प्रसन्न हुए और कहने लगे हे सुग्रीव! भला कहो तो तुम्हारे, बन में रहने का क्या कारण है? ॥

चौ०—नाथ * वालि अरु मैं दोउ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई ॥
† मयसुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ ॥

विचार करने से मित्र और सखा में यह भेद है यथा 'एक क्रियो भवेन्मित्रं समप्राणः सखा मतः' अर्थात् मित्र वह है जो एक ही कार्य को बिना विरोध के करता है और सखा वह है जिस के सब ही व्यवहार शारीरिक या मानसिक एक से होते हैं ॥

* वालि—किष्किधा के राजा ऋक्षराज को इन्द्र के सहारे से वालि नाम का पुत्र हुआ था. ऋक्षराज के मरने पर वालि वहां का राजा हुआ, और सुग्रीव उस का छोटा भाई युवराज बनाया गया. वालि इतना पराक्रमी, तेजस्वी और बलवान् था कि उस के बराबर कोई दूसरा योधा न था. इस ने बहुतेरे योद्धाओं को परास्त किया और राक्षसों को मारा. वालि के बल की बड़ी बड़ाई सुन लंका का राजा रावण भी इस से लड़ने को आया और इस के पास समुद्र के किनारे पर जाकर चाहता था कि इसे पकड़ लें इतने में वालि ने जो उसे देखा तो उठा कर काँख में दबालिया, और किष्किधा में ले आया वहां आकर जब वालि ने रावण से सब हाल पूछा तब तो वह लज्जित हो बनावट से कहने लगा कि मैं तुम्हारी कीर्त्ति सुन तुम से मित्रता करने को आया हूं यह सुन वालि ने उस का एक महीने तक अतिथि सत्कार कर विदा किया.

वालि का संग्राम गोलभ गंधर्व से पन्द्रह वर्ष तक होता रहा. निदान वालि ने उस को मार डाला इस ने दुन्दुभी राक्षस को भी मारा था और उसी के भैंसेरूप शरीर को मतंग ऋषि के आश्रम में फेंक दिया था. इसी कारण मतंग जी ने श्राप देकर ऋष्यमूक पर्वत पर उस का आना बंद कर दिया था इस की स्त्री का नाम तारा व लड़के का नाम अंगद था. इसकी शेष कथा इसी काण्ड में है. इस ने रामचन्द्र जी के हाथ से मृत्यु पा मुक्ति पाई ॥

† मयसुत मायावी तेहि नाऊँ—विप्रचित्त दानव का बेटा 'मय' दिल्ली से कुछ दूर देवगिरि नाम के पर्वत पर रहता था. यह राक्षसों का मानो विश्वकर्मा ही था. इस को हेमा नाम की अप्सरा से दो पुत्र हुए थे एक मायावी और दूसरा दुंदुभी तथा एक कन्या हुई थी जिस का नाम मंदोदरी था. यही मंदोदरी रावण की भार्या हुई दुंदुभी वालि के हाथ से मारा गया. [इस की पूरी कथा इसी काण्ड की टिप्पणी में आगे मिलेगी]. इस का पलटा लेने को मायावी ने एक समय आधीरात को पंपापुर में आकर वालि से घोर युद्ध किया. निदान भाग कर एक पर्वत की कंदरा में जा घुसा, परन्तु वहीं पर वालि के हाथ से मारा गया.

अर्थ—हे स्वामी ! वालि और हम दोनों भाई भाई हैं दोनों में ऐसा प्रेम रहा कि उस का वर्णन नहीं हो सक्ता। हे प्रभु ! (एक समय) मय नाम राक्षस का लड़का जिस का नाम मायावी था (वालि से मारे हुए अपने भाई दुंदुभी का बैर लेने को) हम लोगों के गांव में आया॥

चौ०-अर्धराति पुर द्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहइ न पारा॥
धावा वालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बन्धु सँग लागा॥

अर्थ-उस (मायावी) ने आधी रात के समय गांव के फाटक पर आकर ललकारा वालि अपने बैरी की ललकार नहीं सह सक्ता था। इसलिये ज्योंही वालि उस की ओर झपटा त्योंही वह भागा और मैं भी अपने भाई के साथ ही साथ भागता गया॥

चौ०-गिरिवर गुहा पैठ सो जाई। वालि मोहि तब कहा बुझाई॥
परखेहु मोहि एक पखवारा। नहिं आवउँ तब जानेहु मारा॥

अर्थ—वह मायावी पर्वत की बड़ी गुफ़ा में जा घुसा तब वालि ने मुझ से समझा के कहा कि तुम पन्द्रह दिन तक मेरी राह देखना यदि मैं न लौटूं तो जान लेना कि मैं मारा गया॥

चौ०-*मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी॥

---

* मास दिवस=एक मास या महीने में जितने दिन होते हैं अर्थात् हिन्दी महीने के तीस दिन. 'मास दिवस' का ठीक अर्थ तीस दिन का ही जँचता है क्योंकि सुग्रीव पन्द्रह दिन के बदले वहां एक महीने तक ठहरा रहा और ऐसा ही आशय अध्यात्म रामायण में मिलता है—सर्ग १ ला॥

श्लोक—वाली मामाहतिष्ठत्वं बहिर्गच्छाम्यहं गुहाम्।
इत्युक्त्वा विश्य सगुहां मासमेकं न निर्ययौ॥ ५०॥
मासा दृष्ट्वं गुहा द्वारान्निर्गतं रुधिरं बहु।
तद् दृष्ट्वा परितप्तांगो मृतो वालीति दुःखितः॥ ५१॥

अर्थात् वालि ने मुझ से कहा कि तुम बाहर ठहरो मैं गुफ़ा में पैठता हूं ऐसा कह वह गुफ़ा में घुस गया और एक महीने तक न निकला॥ ५०॥

एक महीने पश्चात् गुफ़ा के द्वार से बहुत सा रक्त बह निकला उसे देख मेरे शरीर में बड़ा संताप हुआ और 'वालि मारा गया' ऐसा समझ दुःखित हुआ.

कोई कोई 'मास दिवस' से, साल में जितने महीने होते हैं उतने ही दिनों का अर्थात् केवल बारह दिन का अर्थ कर यह बात दरसाते हैं कि सुग्रीव पन्द्रह दिन तक तो

‡ वालि हतेसि मोहि मारिहि आई। शिला देइ तहँ चलेउँ पराई ॥

अर्थ—हे खर नाम राक्षस के शत्रु अर्थात् रघुनाथ जी! मैं वहां पर तीस दिन तक ठहरा रहा, तब वहां से बड़ी रक्त की धार बह निकली। (मैं ने समझा कि राक्षस ने) वालि को मार डाला और अब वह आकर मुझे भी मारेगा (इसहेतु गुफ़ा के द्वार पर) एक चटान अड़ा दी और मैं भाग आया॥

चौ०—* मंत्रिन्ह पुर देखा बिन साईं। दीन्हेउँ मोहि राज बरिआईं॥
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जिय भेद बढ़ावा॥

न ठहरा परन्तु बारह ही दिन के पश्चात् रुधिर की धार देख, वालि को मरा जान, गुफ़ा के द्वार को शिला से रूंधकर भाग आया था और इसी से वालि इस पर क्रोधित हुआ था पर इस का प्रमाण कहीं नहीं मिलता. इस के सिवाय 'मास दिवस' इस शब्द का उपयोग गोसाईं जी ने बालकाण्ड में किया ही है यथा—'मास दिवस का दिवस भा, मर्म न जाने कोइ' और भी सुन्दरकाण्ड में—

चौपाई—'मास दिवस महँ कहा न माना। तौ मैं मारब काढ़ि कृपाना'॥

दोहा—'मास दिवस बीते सु मोहि, मारिहि निश्चर पोच'॥

इन स्थानों में सभी लोग एक महीने का अर्थ मान लेते हैं फिर यहां शंका करना वृथा है.

‡ वालि हतेसि .... इस लकीर के ऊपर किसी किसी रामायण में यह क्षेपक है ——'तब मैं निज मन कीन्ह विचारा। जाना असुर बंधु कहँ मारा' और इसी के नीचे चार लकीरों का यह है—

दोहा—वालि महाबल अमित अति, समर न जीतै कोय।
तेहि मारा निशिचरन जब, सो अब मरि हैं मोय॥

चौपाई—गयउ भवन मन सोच अपारा। पूछे वालि कह्यो जिमि मारा॥
पंपापुर के जन तेहि काला। तन व्याकुल मन बहुत विहाला॥

* मंत्रिन्ह पुर देखा बिन साईं। दीन्हेउँ मोहि राज बरिआईं॥

मनुस्मृति अध्याय ७ श्लोक ३ में लिखा है कि:—

श्लोक—अराजके हि लोकेऽस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभुः॥

अर्थात संसार में राजा के न होने से सब कोई भय से व्याकुल होते हैं। इसहेतु सब की रक्षा के लिये परमेश्वर ने राजा को उत्पन्न किया है॥

किष्किंधा पुरी—दक्षिण की तरफ़ मैसूर की हद्द में एक नगरी है जिस का राजा रामचन्द्र जी के समय ऋक्षराज और फिर उस का लड़का वालि हुआ था इसे मार

अर्थ—जब मंत्रियों ने समझा कि (वालि के मारे जाने से) नगर बिना राजा के हो गया तब उन्होंने जबरई से मुझे राजा बना दिया। इतने में वालि उस राक्षस को मार घर आया और मुझे राज्यपद पर देख हृदय से मेरा बैरी बन बैठा ॥

चौ०-रिपु समान मोहि मारेसि भारी। हरि लीन्हेसि सर्वस अरु नारी॥
ताके भय रघुवीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला॥

अर्थ—उस ने शत्रु की नाईं मुझे खूब पीटा और मेरा सब कुछ छीन लिया यहां तक कि स्त्री भी हर ली। हे कृपालु रामचन्द्र जी! तब से उस के डर के मारे मैं व्याकुल हो सब जगह भागता फिरा॥

चौ०-* इहाँ शापवश आवत नाहीं। तदपि सभीत रहौं मन माहीं॥
सुनि † सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं दोउ भुजा विशाला॥

अर्थ—यहां श्राप के मारे (वालि) नहीं आ सक्ता तौ भी मन से डरता हुआ मैं यहां रहता हूँ। दीनों पर दया करने वाले श्री रामचन्द्र जी ने जब अपने भक्त का दुःख सुना तब तो उन की दोनों लम्बी भुजाएँ फरकने लगीं (अर्थात् चित्त में लड़ने का चाव बढ़ा)॥

श्री रामचन्द्र जी ने इस का राज्य इसी के भाई सुग्रीव को दे दिया था और वालि के लड़के अंगद को युवराज बनाया था॥

* इहाँ शापवश आवत नाहीं-वालि ऋष्यमूक पर्वत पर महात्मा मतंग के श्राप के कारण नहीं आसक्ता था, श्राप का कारण यह हुआ कि एक बार दुंदुभी नाम का राक्षस वालि के बल की बड़ाई सुन उस से लड़ाई करने को आया. आधी रात के समय वह 'वालि' 'वालि' कर के पुकारने लगा, वालि काहे को सह सक्ता था. रिपु से आ जुटा, बहुत समय तक घोर द्वंद्व युद्ध हुआ निदान वालि ने उसे जो भैंसे का रूप धारण किये था दे मारा और उस की बड़ी भारी गर्दन को मरोड़ उस के प्राण ले डाले और फिर दूर फेंक दिया वह मतंग ऋषि के आश्रम के समीप जो पड़ा. आश्रम के समीप बहुत सा रुधिर और मरे भैंसे का शरीर देख मतंग ऋषि ने यत्न के द्वारा सब हाल सुनकर वालि को श्राप दिया कि जो वालि फिर कभी इस पर्वत पर आवेगा तो मर जायगा. इस ख़बर को पाते ही वालिने चाहा कि मुनि जी से भेट कर उन से क्षमा मांगूं परन्तु मुनि जी ने उस से भेट ही न की॥

† सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं दोउ भुजा विशाला॥ इस के पश्चात् ४१ लकीरों का एक क्षेपक है सो पुरानी में मिलेगा॥

दोहा-सुन सुकंठ मैं मारिहौं, वालिहि एकहि वाण।
ब्रह्म रुद्र शरणागतहु गये, न उबरहिं प्राण ॥ ७॥

अर्थ—(और बोले) हे सुग्रीव! मैं वालि को एक ही वाण से मार डालूंगा यदि वह ब्रह्मा अथवा शिवजी की शरण भी गहे तौ उस के प्राण न बच सकेंगे (अर्थात् मैं निश्चयपूर्वक वालि को मार डालूंगा और ब्रह्मा शिव भी उसकी सहायता न करेंगे। जैसा आरण्यकाण्ड रामायण में जयन्त के विषय में कहा है ' ब्रह्म धाम शिवपुर सब लोका। फिरा भ्रमित व्याकुल भय शोका॥ काहू बैठन कहा न ओही। राखि को सकै राम कर द्रोही ')॥

चौ०-जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिनहिं विलोकत पातक भारी।
निज दुख गिरिसम रजकरि जाना। मित्र दुःख रज मेरु समाना॥

अर्थ—जो लोग अपने मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते उन की सूरत देखते ही बड़ा पाप होता है। (उचित तो यों है कि) पहाड़ के बराबर अपने अर्थात् बड़े भारी दुःख को भी तुच्छ कर माने परन्तु मित्र के थोड़े ही दुःख को मेरु पर्वत के समान भारी जाने॥

चौ०-जिन के अस मति सहज न आई। ते शठ हठि कत करत मिताई।
*कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटइ अवगुनहिं दुरावा॥

अर्थ—जिन लोगों के स्वभाव ही से ऐसे विचार नहीं होते वे मूर्ख काहे को बरियाई से मित्रता करते हैं। बुरे कामों से बचाकर अच्छे कामों में लगाते हैं उन के अच्छे गुणों को तो प्रकट करते हैं और दुर्गुणों को छिपाते हैं॥

चौ०-देत लेत मन शंक न धरहीं। बल अनुमान सदा हित करहीं॥
विपति काल कर शत गुण नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुण एहा॥

---

* कुपथ निवारि सुपंथ चलावा..............श्रुति कह संत मित्र गुण एहा (तक)—पाठक गण यहां पर तुलसीदास जी तथा भर्तृहरि जी के विचारों की समता पर ध्यान तो दीजिये, यथा—

श्लोक—पापान्निवारयति योजयते हिताय, गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटी करोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले, सन्मित्र लक्षणमिदं प्रवदन्ति संतः॥

अर्थात मित्र को बुरे कर्मों से बचावे, और हितकारी कामों में उसे लगावे उस की गुप्त बातें छिपावे और गुणोंको प्रकट करे, आपत्ति आने पर उसे छोड़े नहीं वरन समय पड़ने पर उसे कुछ देवे यही ऊपर कहे हुए सन्मित्रों के लक्षण सज्जन बता गये हैं॥

अर्थ—देते लेते समय कुछ शंका नहीं करते, अपनी शक्ति के अनुसार सदैव भलाई करते हैं और आपत्ति के समय सौ गुणा विशेष प्रेम करते हैं सज्जन मित्रों के ऐसे लक्षण वेद में कहे हैं ॥

चौ–† आगे कह मृदु वचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥
जाकर चित अहि गति समभाई। अस कुमित्र परिहरेहि भलाई ॥

अर्थ—जो साम्हने तो मीठी मीठी बातें बनाकर कहता है और पीठ पीछे कुबड़ाई कर मन में कपट रखता है। हे प्यारे! जिस का चित्त सर्प की गति के समान टेढ़ा रहता है ऐसे कुमित्र का त्याग ही भला है ॥

चौ०–‡ सेवक शठ नृप कृपण कुनारी। कपटी मित्र शूल समचारी ॥
सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब बिधि करब काज मैं तोरे ॥

अर्थ—उजड्ड नौकर, सूम राजा, कर्कशा स्त्री और छलिया मित्र ये चारों शूल के समान बड़े दुःखदाई होते हैं। हे मित्र! मेरे भरोसे सब चिंताएँ त्यागो, मैं सब प्रकार से तुम्हारा कार्य सिद्ध करूंगा ॥

---

† आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥ जैसा कहा है –

श्लोक—यदीच्छेत्परमां प्रीतिं तत्र त्रीणि न कारयत्।
विवादमर्थं वादं च परोक्षे कूट भाषणम् ॥

अर्थात् यदि उत्तम रीति की मित्रता चाहनी हो तो इन तीन बातों को न करनी चाहिये (१) वाद विवाद (२) देने लेने में सन्देह और (३) पीठ पीछे निंदा ॥

और भी चाणक्य नीति में लिखा है:—

श्लोक—परोक्षे कार्य हन्तारं, प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विष कुंभं पयोमुखम् ॥

अर्थात् पीठ पीछे काम में बाधा डाले और साम्हने मीठी मीठी बातें कहे ऐसे मित्र को त्यागना चाहिये क्योंकि वह इस प्रकार से है जैसे विष भरे घड़े के मुँह पर थोड़ा दूध हो ॥

‡ सेवक शठ नृप कृपण कुनारी———चाणक्य नीति दर्पण में लिखा है ॥

श्लोक—दुष्टा भार्या शठं मित्रं, भृत्यश्चोत्तर दायकः।
ससर्पे च गृहे वासो, मृत्यु रेव न संशयः ॥

अर्थात् कर्कशा स्त्री, धूर्त मित्र, उत्तर देने वाला अर्थात् उजड्ड नौकर और घर में सर्प का रहना इन चारों से निस्सन्देह मृत्यु होती है ॥

चौ०—*कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा। बालि महाबल अति रणधीरा॥
†दुंदुभि अस्थि ‡ताल दिखराये। विनु प्रयास रघुनाथ ढहाये॥

अर्थ—सुग्रीव बोले हे रामचन्द्र जी! सुनिये, बालि बड़ा बलवान् और भारी

---

* कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा.....................इस लकीर के नीचे किसी २ पुस्तक में १२ लकीरों का और किसी २ में २१ लकीरों का क्षेपक है सो पुरौनी में मिलेगा॥

† दुंदुभि अस्थि ताल दिखराये—मयासुर को हेमा नाम अप्सरा से दो पुत्र हुए थे, उन में से जेठा मायावी और छोटा दुंदुभी था. दुंदुभी ने बहुत सी तपस्या कर हज़ारों हाथियों का बल प्राप्त कर लिया था. एक समय उस ने भयंकर भैंसे का रूप धारण कर समुद्र से युद्ध मांगा, समुद्र ने कहा मैं तुम से नहीं लड़ सक्ता. तुम हिमालय से जा जुटो यह सुन वह हिमालय के पास गया और उस ने भी दिल में हार मान उसे यह सूचित किया कि तुम्हारे योग्य योद्धा बालि है. निदान यह आकर बालि से भिड़ा और बहुत घोर द्वंद्व युद्ध के पश्चात् बालि के हाथ से मारा गया. इस के उपरान्त का हाल 'इहां आपवश आवत नाहीं' इस चौपाई की टिप्पणी में मिलेगा. इसी का भारी अस्थि पंजर पड़ा था, उसे सुग्रीव ने रामचन्द्र जी को बालि का बड़ा बल सूचित करने को बतलाया था. सो रघुनाथ जी ने उसे पांव की ऐसी ठोकर मारी कि वह दश योजन की दूरी पर जा गिरा॥

‡ ताल—सप्त तालों की कथा यों है-एक बार बालि किसी बन की सैर को गया वहां पर फल फूल देख प्रसन्न हुआ और सात फल खाने को ले लिये, नगर में आकर उस ने फल तो एक ओर धर दिये और आप स्नान करने लगा, इतने में देखता क्या है कि उन सातों के ऊपर कुंडली मार कर एक सर्प आ बैठा. उसे देखते ही इस ने श्राप दिया कि रे दुष्ट! तू ने मेरे खाने के फलों को नष्ट कर डाला वे ही फल वृक्षरूप हो तेरे शरीर को छेदें. श्राप के कारण मंडलाकार ताल के सातों वृक्ष जम उठे और सर्प मर गया. इस सर्प के पिता तक्षक ने जब यह हाल सुना तो उस ने भी बालि को श्राप दिया कि जो इन सातों ताल के वृक्षों को एक बाण से बेधेगा उसी के हाथ से तेरी मृत्यु होवे॥

श्री रामचन्द्र जी ने ऐसा ही किया, परन्तु ऐसा करते समय वे बातें दरसाईं जिन के कारण लोग भी ऐसा करने के योग्य हो सक्ते हैं जैसा हृदयराम कवि कृत हनुमन्नाटक में कहा है:—

सवैया—जो ऋषिराज के पाइन मो मन पंकज भौंर की रीति बसायो।
सीय बिना सपने परनारिहि जो अपनो मुख मैं न दिखायो॥
और सही भृगुनंदन को फिर जो नहि रोष को बोल सुनायो।
तो यहि बान पताल धसै इन तालन भेद सु खैंच चलायो॥

योद्धा है। (इतना कह) उस ने दुंदुभी नाम राक्षस की हड्डियां और सातों ताल के वृक्ष दिखलाये तो रामचन्द्र जी ने उन सब को सहज ही में गिरा दिया (अर्थात् पांव के अंगूठे की ठोकर से दुंदुभी राक्षस के सूखे अस्थि पंजर को कई योजन दूर फेंक दिया और एक ही बाण से सातों चन्द्र मंडलाकार ताल के वृक्षों को छेद गिराया)॥

चौ०—देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि वधब इन्ह भइ परतीती॥
बार बार नावइ पद सीसा। प्रभुहि जानि मन हर्ष कपीसा॥

अर्थ—रामचन्द्र जी का अतुलित बल देख सुग्रीव का प्रेम और भी बढ़ गया और उसे यह विश्वास हो गया कि ये बालि को मार डालेंगे, बारंबार उनके चरणों पर शिर नवाता था और उन्हें अपना स्वामी जान वानरराज अपने मन में प्रसन्न होता था॥

चौ०—उपजा ज्ञान बचन तब बोला। नाथ कृपा मन भयेउ अडोला॥
सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई॥

अर्थ—सुग्रीव को (सत्य) ज्ञान उत्पन्न हो गया तब वह यों कहने लगा हे स्वामी! आप की दया से अब मेरा मन स्थिर हुआ। मैं अपने सम्पूर्ण सुख, धन, कुटुम्बी लोगों और प्रतिष्ठा को त्याग आप की सेवा किया करूंगा।

चौ०—*ये सब रामभक्ति के बाधक। कहहिं संत तब पद अवराधक॥
‡शत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं। मायाकृत परमारथ नाहीं॥

---

* ये सब रामभक्ति के बाधक—सुख, संपदा और परिवार के लोगों के कारण ईश्वर के भजन में बाधा अवश्य पड़ती है जैसा महात्मा 'सुन्दर' कहते हैं—

॥ सवैया॥

बार बार कह्यो तोहि सावधान क्यों न होय ममता की पोट शिर काहे को धरत है।
मेरो धन मेरो धाम मेरे सुत मेरी वाम मेरे पशु मेरो ग्राम भूल्यो यों फिरत है॥
तू तो भयो बावरो बिकाय गई बुद्धि तेरी ऐसो अन्धकूप गृह ता में तू परत है।
'सुन्दर' कहत तोहि नेकहू न आवे लाज काज कूं बिगार के अकाज क्यों करत है॥

‡ शत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं। मायाकृत परमारथ नाहीं॥

राग देव गंधार—जगत में झूठी देखी प्रीत॥ टेक॥

अपने ही सुख सों सब लागे क्या दारा क्या मीत।
अन्तकाल संगी नहिं कोऊ यह अचरज है रीत॥
मन मूरख अजहूँ नहि समझत सिख दे हार्यो नीत।
'नानक' भवजल पार परे जो गावे प्रभु के गीत॥

शब्दार्थ—अवराधक = आराधना किंवा सेवा करने वाले ॥

अर्थ—(कारण) 'ये सब रामचन्द्र जी की भक्ति में बाधा डालने वाले हैं' इस प्रकार आप के चरणों की आराधना करने वाले सज्जनों का कथन है। संसार में बैरी और मित्र, सुख और दुःख ये सब माया के चोचले हैं इन में परमार्थ काहे का ?

चौ०—बालि परम हितु जासु प्रसादा । मिलेहु राम तुम्ह शमन विषादा ॥
सपने जेहि सन होय लराई । जागे समझत मन सकुचाई ॥

अर्थ—हे दुःख के दूर करने वाले रामचन्द्र जी ! जिस के कारण मुझे आप मिले ऐसे वालि को मैं अपना बड़ा हितुआ समझता हूं। जो किसी से सपने में लड़ाई हो जावे यदि जाग कर उस बात को समझे तो मन में बड़ा संकोच होता है ('इसी प्रकार ज्ञान उत्पन्न होने पर वालि से शत्रुता के ही कारण राम दर्शन हुए' ऐसा समझ वह वैर भूल गया और मन में लज्जित हुआ कि इस स्वप्नवत् संसार में न कोई किसी का मित्र है और न शत्रु) ॥

चौ०—अब प्रभु कृपा करहु इहि भाँती । सब तजि भजन करउँ दिनराती ॥
सुनि विराग संयुत कपि वाणी । बोले ×विहँसि राम धनुपाणी ॥

अर्थ—इसहेतु हे स्वामी ! अब ऐसी कृपा करो कि जिस से सब को छोड़ आप का भजन दिनरात किया करूं। इस प्रकार वैराग्य से भरे हुए सुग्रीव के वचन सुन धनुषधारी अवधविहारी हँस के कहने लगे ॥

चौ०—जो कछु कहहु सत्य सब सोई । सखा वचन मम मृषा न होई ॥
नट †मर्कट इव सबहि नचावत । राम खगेश वेद अस गावत ॥

× बोले विहँसि इत्यादि—रामचन्द्र जी के हँसने का कदाचित् यह कारण है कि उन्हों ने सुग्रीव में माया की प्रबलता और ज्ञान का प्रभाव दोनों देख लिये कहाँ तो वह मोहवश वालि को मारने के लिये प्रार्थना करता था और कहाँ ज्ञान उत्पन्न होते ही उसे अपना परम हितू मान अपने द्वेष पर लज्जित हुआ ॥

† नट मर्कट इव सबहि नचावत —————— श्री मद्भगवद्गीता के १८ वें अध्याय में लिखा है—

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्व भूतानि यंत्रारूढ़ानि मायया ॥ ६१ ॥

अर्थ—(श्री कृष्ण जी कहते हैं) हे अर्जुन ! ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में निवास करता है वह सब प्राणियों को मानो चक्र पर चढ़ाये हुए माया से घुमा रहा है ॥

अर्थ—जो तुम कहते हो सो सब ठीक है परन्तु हे मित्र! मेरा बचन भी झूठ नहीं हो सक्ता (यहां पर जो बचन पुष्ट करते हैं सो यह है "सुन सुकंठ मैं मारि हौं वालिहि एकहि बाण" इत्यादि)। (कागभुशुंड जी कहते हैं) हे गरुड़ जी! वेद में ऐसा कहा है कि रामचन्द्र जी प्राणियों को इस प्रकार नचाते हैं जिस प्रकार मदारी बंदरों को नचाता है॥

चौ०—लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जसि जाय निकट बल पावा॥

अर्थ—रामचन्द्र जी हाथ में धनुष बाण धारण कर सुग्रीव को साथ ले चले। फिर इन्हों ने सुग्रीव को पंपापुर में वालि से लड़ने के लिये भेजा और उस ने रामचन्द्र जी का बल पाय वालि को जा ललकारा॥

चौ०—सुनत वालि क्रोधातुर धावा। *गहि कर चरण नारि समझावा॥
सुनु पति जिनहिं मिला सुग्रीवा। ते दोउ बंधु तेज बल सींवा॥

अर्थ—ललकार सुनते ही वालि भी क्रोधित हो झपटा तो उस की स्त्री ने चरण पकड़ कर उस से विनय की कि हे प्राणनाथ! जिन से सुग्रीव ने मित्रता की है वे दोनों भाई बड़े तेजस्वी और बलवान हैं।

---

* गहि कर चरण नारि समझावा—तारा बोली कि मैं ने अंगद से सब हाल सुन लिया है अब सुग्रीव से लड़ना उचित नहीं, यह आशय राम रत्नाकर रामायण में यों दरसाया है—

चौ: अब यह आय तुमहिं ललकारा। पायो तेहि अति प्रबल सहारा॥
जब सब भाँति परिक्षा लीन्हीं। तब सुग्रीव मित्रता कीन्हीं॥

दोहा—सुनि सुकण्ठ की दीनता, बचन दियो रघुवीर।
सखा प्रबल तुव शत्रु को, हनो एक ही तीर॥

चौ:—सो रघुनाथ काल सम योधा। खल दल नाशक सम्यक बोधा॥
तिन ते नहिं विरोध पति कीजे। मेरा कहो नाथ चित दीजे॥
मैं बरजति जेहि कारण स्वामी। भयो बन्धु तुव प्रभु अनुगामी॥
ताते ताहि देहु युवराजू। नाहित तुव सब भाँति अकाजू॥

× × × × ×

दोहा—तेजवन्त गुणवन्त ते, कबहुँ न कीजे बैर।
बैर किये बलवन्त से, बिनसत लगे न देर॥

चौ०—कोशलेशसुत लक्ष्मण रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा॥
सोइ रघुवीर हृदय महँ आनहु। छाँड़हु मोह कहा मम मानहु॥

अर्थ—कोशलपति दशरथ जी के पुत्र लक्ष्मण और रामचन्द्र जी युद्ध में काल को भी जीत सक्ते हैं। उन्हीं रामचन्द्र जी को हृदय में धारण करो और मेरा कहना मान कर अज्ञान को छोड़ो॥

दो०—कहा वालि सुनु भीरु प्रिय, समदर्शी रघुनाथ॥
जो कदापि मोहि मारि हैं, तौ पुनि होउँ सनाथ॥ ८॥

शब्दार्थ—भीरु = कातर, डरने वाली।

अर्थ—वालि बोला हे डरने वाली स्त्री! रामचन्द्र जी तो सब को समान दृष्टि से देखते हैं इतने पर भी जो कदाचित् मेरे प्राण लेंगे तौ भी मैं मुक्ति पा जाऊँगा।

चौ०—अस कहि चला महा अभिमानी। तृण समान सुग्रीवहि जानी॥

अर्थ—ऐसा कह वह बड़ा घमंडी वालि सुग्रीव को तुच्छ समझ कर चला॥

चौ०—भिरे उभय वाली अति तर्जा। मुष्टिक मारि महा ध्वनि गर्जा॥
तब सुग्रीव विकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार वज्र सम लागा॥

शब्दार्थ—तर्जा (तर्ज = धमकाना) = क्रोधित हुआ, तड़पा।

अर्थ—दोनों जुट गये वालि बहुत तड़पा उस ने सुग्रीव को एक घूंसा मारा और बड़ी भारी गर्जना की। तब सुग्रीव व्याकुल हो के भाग आया कारण घूंसे की चोट उसे वज्र के समान लगी॥

चौ०—मैं जो कहा रघुवीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला॥
एक* रूप तुम भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम ते नहिं मारेउँ सोऊ॥

---

* एक रूप तुम भ्राता दोऊ—इस में लोग बहुधा यह शंका करते हैं कि रामचन्द्र जी तो सर्वज्ञ हैं वे वालि और सुग्रीव के रूपों में भद क्यों न समझ सके और उस की पुष्टि में कहते हैं कि बाल्मीकि जी ने भी यही बात स्पष्ट कहा है यथा—बाल्मीकीय रामायण के उलथा राम रत्नाकर रामायण से—

दोहा—भिरे आन युग बन्धु जहँ, बुध मंगल सम जान।
विटप ओट रघुपति तहां, लखत कौन बलवान॥
चौ०—एक रूप लख बानर दोई। कठिन बाण छाँड़ा नहिं सोई॥
व्याकुल हुइ सुकण्ठ तहँ भागा। ऋष्यमूक के मारग लागा॥

× × × × × ×

(तब)

अर्थ—हे दयाल रामचन्द्र जी ! मैं ने तो कहा था कि यह मेरा बंधु नहीं है ये तो मेरे लिये कालरूप है। (रामचन्द्र जी बोले) तुम दोनों भाई एक ही से दीख पड़े उसी से संदेह वश उसे नहीं मारा ॥

दोहा—तब सुकण्ठ रघुनाथ प्रति. बोले दुखित शरीर ॥
मोहि पठै वाली निकट. कपट कियो रघुवीर ॥

चौ०—बालि बधन की पैज न करते। तौ हम पुरी पाँव नहिं धरते ॥
सुनि सुग्रीव वचन रघुराई। बोले उर करुणा अति छाई ॥
जुगल बन्धु तुम एक सरीखे। आकृति वयस तेज सम दीखे ॥
तेहि भ्रम पाय वाण नहि घाला। प्राण हरण शर कठिन कराला ॥
जो यह वाण लगत तुव छाती। तौ मोहि कहत राम प्रिय घाती ॥
ताते अब न शोक उरधारो। चिन्ह सहित पुनि साथ सिधारो ॥
हम इहि विपिन सहित लघुभाई। बसत अभयलखि तुमहिं सहाई ॥

दोहा- अस कहि निज अनुजहि दियो, आयसु करुणाकन्द।
फूल माल कपि कंठ महँ पहिरावहु आनंद ॥

इस का साधारण समाधान तो यह है कि रामचन्द्र जी नरलीला कर रहे हैं इसी हेतु उन्हों ने मनुष्यों ही के स्वभाव के अनुकूल वचन कहे हैं कारण ऐसा न होता तो वे सुग्रीव से सीता की खोज में सहायता के हेतु मिताई क्यों करते और हनुमान् को सीता की खोज में काहे को भेजते तथा सुग्रीव से काहे को कहते कि हम तुम्हारे भरोसे निर्भय होकर इस वन में भाई समेत बसते हैं इत्यादि जैसा कि ऊपर की पंक्ति में कह आये हैं 'हम इहि विपिन सहित लघु भाई। बसत अभय लखि तुमहिं सहाई' यह सब नरनाट्य लीला के अनुसंधान से है यथार्थ समाधान यों है कि इस में यह शंका ही न करनी चाहिये कि रामचन्द्र जी सुग्रीव और वालि में भेद न जान सके कारण यद्यपि वालि और सुग्रीव के रूप में कुछ समता भी थी तौभी (१) प्रभु सर्वज्ञ हैं (२) वे सुग्रीव से मिल भेंट उस से मिताई कर उसे पहिचान चुके थे (३) सुग्रीव व्याकुल हो हार कर भागा भी था. इत्यादि कारणों से वालि का पहिचानना कुछ कठिन न था. परन्तु एक रूप कहने से रामचन्द्र जी का यही अभिप्राय था कि जब सुग्रीव को रामचन्द्र जी के साथ मित्रता करने से ज्ञान उत्पन्न हुआ था तब उस ने कहा था 'वालि परमहित जासु प्रसादा। मिलेउ राम तुम शमन विषादा' इत्यादि. इसहेतु सुग्रीव के विचार में वालि जिसे उस ने अपना हित कर बन्धु समझा था सुग्रीव के तद्रूप मान नहीं मारा न कि स्वरूप के आकार में एक सा होने से न पहिचान कर; परन्तु जब सुग्रीव मायावश हो वालि से लड़कर भागा और रामचन्द्र जी से कहने लगा कि 'बन्धु न होइ मोर यह काला' तब एक रूपता नष्ट होने से वालि को मारा ॥

चौ०—कर परसा सुग्रीव शरीरा। तनु भा कुलिश गई सब पीरा॥
मेली * कंठ सुमन की माला। पठवा पुनि बल देइ विशाला॥
पुनि नाना विधि भई लराई। † विटप ओट देखहिं रघुराई॥

शब्दार्थ—परसा (स्पर्श किया)= छुआ। मेली = डाल दी।

अर्थ—रामचन्द्र जी ने अपना हाथ सुग्रीव के शरीर पर फेर दिया तो उस का शरीर वज्र सा हो गया और सब दुःख दूर हुए। फिर उन्हों ने उस के गले में फूलन की माला पहिना कर बहुत बल दे वालि के पास भेजा। फिर भी नाना प्रकार से लड़ाई होने लगी जिसे रामचन्द्र जी वृक्ष की ओट से देख रहे थे॥

दो०—बहु छल बल सुग्रीव करि, हिये हार भय मानि॥
मारा वालिहि राम तब, हृदय माँझ शर तानि॥ ६॥

अर्थ—यद्यपि सुग्रीव ने बहुत से दाव पेंच किये तौ भी वह हृदय से निराश हो डर गया इतने में रामचन्द्र जी ने वालि के हृदय में खींच कर वाण मारा॥

* मेली कंठ सुमन की माला—सुमन का साधारण अर्थ फूल है और फूलों की माला गले में डाल कर यह दरसाया कि रामचन्द्र जी का सुग्रीव की ओर 'सुमन' अर्थात् अच्छा मन है. भाव यह है कि रामचन्द्र जी ने सुग्रीव का पक्ष लिया और अब उस पर विशेष कृपा की॥

† विटप ओट देखहिं रघुराई—वृक्ष के पीछे से देखने का अभिप्राय एक तौ यह है कि रामचन्द्र जी वालि और सुग्रीव दोनों भाइयों की लड़ाई देखना चाहते थे यदि साम्हने आजाते तो कदाचित् ऐसा अवसर न मिलता दूसरे विटप की ओट में इस कारण रहे कि जिस में वालि के सन्मुख लड़ाई करने से वालि को वरदान के अनुसार शत्रु को सन्मुख देख अपने बल बढ़ाने का अवसर न मिले. इस में कोई कोई विद्वानों का कथन है कि रामचन्द्र जी के बल से वालि का बल नहीं बढ़ सक्ता था सो यह विचार ठीक नहीं जँचता, कारण वे तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं यदि वे ही अपने वरदानों का पक्ष न करें तौ स्वतः मर्यादा के तोड़ने वाले हो जावें विचार करने से समझ पड़ेगा कि उन्हों ने अनेक स्थानों पर मर्यादा का पालन किया जैसे लक्ष्मण जी को शक्ति लगने के समय और अपने को नाग फांस में बंधवा कर मर्यादा का परिचय दिया. इस के सिवाय वाल्मीकीय रामायण में स्पष्ट लिखा है कि सुग्रीव कुछ कम बली न था परन्तु वालि से लड़ते २ अपना बल मानो वालि को दे उसे बलवान् करता और आप निर्बल होता जाता था जैसे (राम रत्नाकर रामायण में लिखा है.)

चौ०—बहु बिधि लरत जुगल बल बीरा। बढ़त जात बल वालि शरीरा॥
सूरजसुत बल निघटत जाई। तदपि क्रोध वश करत लड़ाई॥

चौ०—परा विकल महि शर के लागे। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे॥
श्यामगात शिर जटा बनाये। अरुन नयन *शर चाप चढ़ाये॥

अर्थ—वाण के लगते ही वालि व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़ा फिर ज्यों ही उठ के बैठा तो क्या देखता है कि रामचन्द्र जी साम्हने खड़े हैं। उन का श्यामला शरीर था और शिर पर जटाजूट सुशोभित था, उन के नेत्र लाल थे और वे वाण तथा रोदा चढ़े हुए धनुष को लिये थे (न कि धनुष पर वाण चढ़ाये हुए थे)॥

सूचना—इसी अर्थ की पुष्टि नीचे लिखी हुई कविता से होती है जो गोसाईं जी ने इसी काण्ड में १८वें दोहे के पश्चात् लिखी है यथा 'धनुप चढ़ाय गहे कर बाना'॥

दूसरी लकीर का दूसरा अर्थ—रामचन्द्र जी के नेत्र लाल थे और वे अपने धनुषरूपी भौंहों पर मानो क्रोधरूपी चितवन का वाण चढ़ाये थे (अर्थात् क्रोध के मारे रामचन्द्र जी के नेत्र लाल और भौंहें विशेष टेढ़ी हो रहीं थीं)॥

---

* 'शर चाप चढ़ाये' का अर्थ कोई कोई लोग ऐसा करते हैं कि रामचन्द्र जी ने धनुष पर वाण (फिर से) चढ़ा लिया था और फिर शंका करते हैं कि रामचन्द्र जी ने दूसरा वाण क्यों चढ़ाया और यदि चढ़ाया तो उन का वाण अमोघ है सो वह निष्फल क्यों रहा.? हमारी समझ में तो टीका में कियेहुए अर्थों से ऊपर कही हुई शंकाओं का अवकाश ही नहीं रहता और इस के सिवाय गोसाईं जी के कथन से भी प्रतीत होता है कि उन का यह आशय नहीं था, कारण उन्हों ने उस वाण को न उतारने और न किसी पर चलाने का हाल लिखा है बरन यह कहा है कि 'सुनत राम अति कोमल वाणी। वालि सीस परसा निज पाणी' यदि धनुष पर वाण चढ़ाये थे तो वालि के मस्तक पर अपना हाथ कैसे फेरा? इस के सिवाय अध्यात्म रामायण में लिखा है कि—

श्लोक—ततो वाली ददर्शाग्रे रामं राजीव लोचनं।
धनुरालम्ब्य वामेन, हस्ते नान्येन सायकं॥

अर्थात् तब वालि ने अपने साम्हने कमलनयन रामचन्द्र जी को देखा जो अपने बायें हाथ में धनुष और दाहिने हाथ में वाण लिये थे और भी यदि यह कहें कि जो वाण वालि को मारा गया था वही फिर धनुष में आ लगा था सो भी नहीं बनता क्योंकि अध्यात्म रामायण ही में उस के बारे में यों लिखा है यथा—

श्लोक—विशल्यं कुरुमे राम, हृदयं पाणिना स्पृशन्।
तथेति वाण मुद्धृत्य, रामः पस्पर्श पाणिना॥

अर्थ (वालि बोला) हे राम! मुझे अपने हाथ से छूते हुए मेरे शरीर का वाण निकाल लो. 'ठीक है' ऐसा कह रामचन्द्र जी ने वाण को निकाल कर उस के शरीर पर अपना हाथ फेरा.

सूचना—(लल्लूराम कविकृत प्रेम सागर तो देखिये कि जिस में लिखा है)-रुक्मिणी जी गांव के बाहर देवी पूजने को गई थीं और वहीं पर श्री कृष्ण जी को आया हुआ देख उन्हों ने अपने नेत्र कटाक्षों से उन की ओर देखा था सो यों कि—

सो०—भृकुटी धनुष चढ़ाय, अंजन वरुणी पनच कै।
लोचन बान चलाय, मारे पै जीवत रहै॥

यहां पर भृकुटी धनुष और नेत्र कटाक्ष ही बाण कहा गया है यथार्थ धनुष बाण नहीं था॥

चौ०—पुनि पुनि चितइ चरण चित दीन्हें। सफल जन्म माना प्रभु चीन्हें॥
हृदय प्रीति मुख वचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥

अर्थ—बारम्बार निहार कर उसने चरणों में प्रीति लगाई और प्रभु को पहिचान अपना जन्म सफल जाना। उस के हृदय में तो प्रेम था परन्तु रामचन्द्र जी की ओर देखकर वह मुख से ये कड़े वचन कहने लगा॥

चौ०—‡धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि व्याध की नाईं॥
मैं बैरी सुग्रीव पियारा। कारण कवन नाथ मोहि मारा॥

अर्थ—हे गोसाईं! आप ने धर्म की रक्षा के हेतु पृथ्वी पर अवतार लिया है फिर आप ने मुझे बहेलिया की नाईं (छिप कर) क्यों मारा? हे स्वामी! किस कारण मैं आप का शत्रु और सुग्रीव आप का मित्र समझा गया जिस से आप ने मुझे मारा॥

दूसरी लकीर का दूसरा अर्थ—मैं सुग्रीव का बैरी या प्यारा (बन्धु) था हे रामचन्द्र जी! आप ने किस कारण से मुझे मारा? अर्थात् बैरी या प्यारा जो कुछ था सो मैं सुग्रीव का था (न कि आप का) फिर आप ने मुझे क्यों मारा?

चौ०—†अनुजवधू भगिनी सुतनारी। सुन शठ कन्या ए सम चारी॥
इनहिं कुदृष्टि विलोकै जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥

---

‡ धर्म हेतु—देखो टि० पृ० ३३ में ('विटप ओट के नोट पर)॥

† अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुन शठ कन्या ए सम चारी॥

जैसा कि अध्यात्मरामायण में लिखा है:—

श्लोक—अधर्म कारिणं हत्वा, सद्धर्मं पालयाम्यहम्।
दुहिता भगिनी भ्रातु भार्या चैव तथास्नुषा॥ १॥
समायो रमते तासा, मे कामपि विमूढ़ धीः।
पातकी सतु विज्ञेयः सवध्यो राजभिः सदा॥ २॥

अर्थात् मैं अधर्म के करने वाले को मार कर सत्पुरुषों के धर्म की रक्षा करता हूं। कन्या, बहिन, छोटे भाई की स्त्री, और पुत्र की स्त्री ये चारों बराबर हैं॥ १॥ जो मूढ़-मति इन में से एक में भी रमे तो पातकी जानो और वह राजाओं से मारने योग्य है॥ २॥

अन्वय—रे शठ सुन ! अनुज बधू, भगिनी, सुतनारी, कन्या ए चारी सम (हैं)।

अर्थ—(रामचन्द्र जी बोले) अरे मूर्ख सुन ! (१) छोटे भाई की स्त्री, (२) बहिन, (३) पुत्र की स्त्री और (४) पुत्री, ये चारों समान हैं जो प्राणी इन्हें पाप दृष्टि से देखे तो उस के मार डालने से कुछ दोष नहीं लगता (फिर तो तू ने अपने छोटे भाई की स्त्री को जबरन घर में डाल रक्खा है तो तुझे मार डालना धर्मशास्त्र युक्त ठहरा) यह वालि के पहिले प्रश्न का उत्तर है ॥

सूचना—कोई २ लोग 'ए कन्या समचारी' ऐसा पाठान्तर देख भ्रम से ऐसा अर्थ कर बैठते हैं कि (१) छोटे भाई की स्त्री, (२) बहिन, (३) लड़के की स्त्री ये चारों कन्या के समान समझनी चाहिये और फिर ये शंका करते हैं कि कन्या के समान ऊपर कही हुई तीन व्यक्तियाँ हुईं चौथी कहाँ है ? सो शंका ठीक नहीं है ऐसी शंका अध्यात्म रामायण के श्लोकों के देखने से रहती ही नहीं (श्लोक टिप्पणी में लिख दिये हैं) ॥

चौ०—मूढ़ तोहि अतिशय अभिमाना। नारि सिखावन करेसि न काना ॥
मम * भुजबल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥

अर्थ—रे मूर्ख ! तुझे बड़ा भारी घमंड है जब तो तू ने अपनी स्त्री के कहने पर कुछ ध्यान न दिया। रे पापी अहंकारी ! तू सुग्रीव को मेरी कुमक में जान करके भी मारना चाहता था ॥

दो०—सुनहु राम स्वामी सुभग, चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पातकी, अंतकाल गति तोरि ॥ १० ॥

अर्थ—(वालि ने विनय की) हे रामचन्द्र जी ! आप तो चतुर स्वामी हैं आप से मेरी चतुराई नहीं चल सक्ती ? परन्तु हे प्रभु ! (सोचिये तो सही) क्या मैं अभी तक पापी ही बना रहा जब कि मेरी मृत्यु आप के हाथ से हुई। भाव यह कि मेरे मारने के कारण जो आप ने कहे सो ठीक हैं परन्तु जब कि मैं पातकी आप के हाथ से मारा गया और आप के सन्मुख प्राण त्यागूंगा तो अब पापी नहीं रह सक्ता ? मेरे पाप तो सब छार हो गये ॥

---

* मम भुज बल आश्रित तेहि जानी—
दोहा—तुलसी लोहा काठ सँग, तरत फिरत जल माँह।
बड़े न बूड़न देत हैं, जाकी पकरत बाँह ॥

दूसरा अर्थ—(वालि ने विनय की) हे चतुर रामचन्द्र जी! मेरी भी चलन चातुरी अर्थात् चतुराई का उपाय तो देखिये कि मैं ने मरते समय आप के दर्शन पाये तो क्या अब भी मैं पापी बना रहा (अर्थात् तारा के रोकने पर भी मैं इस विचार से सुग्रीव से लड़ा कि या तो आप मेरा आपस में निपटारा करा देवेंगे या मुझे मारेंगे और आप के हाथ से मर कर अपने पापों से मुक्त होऊंगा)॥

चौ०—सुनत राम अति कोमल वाणी । वालि सीस परसेउ निज पाणी ॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना । वालि कहा सुनु कृपानिधाना ॥

अर्थ—जब रामचन्द्र जी ने वालि के नम्र वचन सुने तब उन ने अपना हाथ उस के शिर पर फेरा (और कहा) कि मैं तुम्हारे शरीर को अटल करे देता हूं तुम अपने प्राण मत त्यागो इतना सुन वालि ने विनती की कि हे दयासागर! सुनिये—

चौ०—*जन्म जन्म मुनि यतन कराहीं । अंत राम कहि आवत नाहीं ॥
‡जासु नाम बल शंकर काशी । देत सबहि समगति अविनाशी ॥
मम लोचन गोचर सोइ आवा । बहुरि कि प्रभु अस बनहि बनावा ॥

अर्थ—मुनि लोग अनेक जन्म पर्यन्त उपाय करते रहते हैं फिर भी उन के मुख से मरण समय 'राम' ऐसा नाम नहीं निकलता ॥

दूसरा अर्थ—मुनि गण अनेक जन्म पर्यन्त यत्न करते हैं कि जिस से मरने के समय वे 'राम' शब्द कह सकें सो 'आवत नाहीं' अर्थात् फिर लौटते नहीं । भाव यह कि वे आवागमन से छूट जाते हैं जैसा कि श्री मद्भागवत् के छठवें स्कन्ध में लिखा है—

श्लोक—म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रो पचारितं ।
अजामिलोप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥

अर्थात् अजामील मरते समय अपने नारायण नामी पुत्र के पुकारने से मानो नारायण ही का नाम उच्चारण करने से मुक्ति पागया फिर जो विश्वासपूर्वक हरि नाम लेगा वह क्यों न तरेगा ॥

जिस नाम के प्रताप से शिव जी भी काशी जी में सब को नाश रहित गति अर्थात् मुक्ति देते हैं । वे रामचन्द्र जी मेरे नेत्रों के सन्मुख खड़े हैं हे प्रभु! (आप ही कहिये) क्या ऐसा सुअवसर फिर मिल सक्ता है अर्थात् नहीं ॥

---

* जन्म जन्म' का पाठान्तर 'कोटि कोटि' भी है ।

‡ जासु नाम बल शंकर काशी—बालकांड में १८ वें दोहे के पश्चात 'काशी मुक्ति हेतु उपदेशू' की टिप्पणी देखो.

छंद-सो नयन गोचर जासु गुण नित नेति कहि श्रुति गावहीं।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं॥
मोहि जानि अति अभिमान वश प्रभु कहेहु राख शरीरहीं।
अस कवन शठ हठि काटि सुरतरु बारि करहिं ‡ बबूरहीं॥

अर्थ—जिस के गुणानुवाद वेद सदैव न इति न इति कहकर गाते हैं सो मेरे नेत्रों के सामने खड़े हैं और पंच प्राण और मन को जीति तथा इन्द्रियों को वश में कर के मुनिजन कभी कभी जिस का ध्यान कर पाते हैं। हे प्रभु! आप मुझे बड़ा अहंकारी समझ कहते हैं कि शरीर मत त्यागो। सो ऐसा कौन मूर्ख होगा जो जान बूझ कर कल्पतरु को काट उस की बारी से बबूर की रक्षा करने का प्रयत्न करे (अर्थात् मुक्ति को त्याग जीवन आश पर विश्वास करे)॥

छंद-अब नाथ करि करुणा विलोकहु देहु यह वर माँगऊँ।
‡ जिहि योनि जन्मौं कर्मवश तहँ रामपद अनुरागऊँ॥

---

‡ बबूरहीं—बबर के वृक्ष की बहुधा निरर्थकता नीचे के कवित्त में लिखी है जैसे—

सरस बगीचा के समीप अति सोहत है कायर कठोर कूर याते गुन गै है का।
निकट गये ते उरझत सुरझत नाँह फाट जैहैं बसन तब या में बाँध लै है का॥
मूल के सुजन सु खिलमियो न छाँह बीच फूलो है फरो है सो निकाम काम ऐ है का।
कारो बदनूर बहु पातन को खर कुच काँटन को मूर जो बबूर फल दै है का॥

+ जेहि योनि जन्मौं कर्मवश तहँ रामपद अनुरागऊँ—बालि ने मरते समय अटल भक्ति तो मांगी परन्तु बार २ अपने कर्मों के अनुसार जन्म लेना मानो स्वीकार ही कर लिया सो मानो भावी सूचक था, कारण बालि को प्राण रहित देख कर तारा ने नाना प्रकार से विलाप कर रामचन्द्र जी को श्राप दिया था वह रामरत्नाकर रामायण के अनुसार यों है—

दो०—ज्यौं मेरो पति आपने, छिप कर मारो आन।
त्यौं ही बाली व्याध हुइ मारहि तुव पद बान॥
चौ०—द्वापर अंत आप अवतर हो। नंद भवन लीला अनुसर हो॥

× × × × × × ×

ब्रह्म श्राप ते निज कुल नाशो। निज कीरति त्रैलोक प्रकाशो॥
दो०—पिप्पल तरुतर बैठ के, ध्यान करहुगे जाय।
छिप कर व्याध स्वरूप यह मारहिगो रघुराय॥

यह तनय मम सम विनय बल कल्याण पद प्रभु दीजिये ।
गहि बाँह सुर नर नाह ‡ अंगद दास आपन कीजिये ॥

अर्थ—हे स्वामी ! अब मुझे दया दृष्टि से देखिये और जो वरदान मैं मांगता हूँ सो मुझे दीजिये। अपने कर्मों के अनुसार जिस जीव कोटि में उत्पन्न होऊँ वहीं आप के चरणों में प्रीति लगी रहे। इस मेरे लड़के को जिस में नम्रता और बल मेरे समान है, अभय पद दीजिये और हे देवताओं तथा मनुष्योंके स्वामी ! इस अंगद की बाँह गहकर अपना दास बनाइये ॥

दोहा—रामचरण दृढ़ प्रीति करि, वालि कीन्ह तनु त्याग ।
सुमन माल जिमि कंठ ते, गिरत न जानै नाग ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—सुमन माल = फूलों की माला। नाग = हाथी, जैसा कि कोष में लिखा है ‘ नागो मतंगजे सर्पे पुन्नागे नागकेसरे ’

अर्थ—रामचन्द्र जी के चरणों में अटल प्रेम करके वालि ने अपना शरीर छोड़ा। जिस प्रकार हाथी अपने गले की फूल माला गिरते हुए नहीं जानता। भाव यह है कि राम चरण प्रेम से वालि को प्राण त्याग का क्लेश लेशमात्र भी न हुआ जैसे हाथी को अपने गले की फूल माला गिरने का ज्ञान भी नहीं होता ॥

चौ०—राम वालि निज धाम पठावा । नगर लोग सब व्याकुल धावा ॥
नाना विधि विलाप करि × तारा । ‡ छूटे केश न देह सँभारा ॥

---

‡ अंगद—वालि और तारा का लड़का बृहस्पति जी के अंश से उत्पन्न हुआ था. इसहेतु इस में वचन चातुरी अच्छी थी इस की कथा कुछ तो इसी काण्ड में है और कुछ लंका काण्ड में है वहां पर यह रावण के पास भेजा गया था और इस का जो संवाद रावण से हुआ था वह पढ़ने योग्य है इस ने लंका युद्धके समय बड़े २ अद्भुत काम किये थे सुग्रीव जब बैकुंठ धाम को सिधारा तब अंगद किष्किन्धा का राजा हुआ ॥

× तारा—यह सुखेन नाम वानर की कन्या बड़ी ही रूपवती और चतुर थी. इस ने अपने पति वालि को सुग्रीव से लड़ने को रोका था जब कि उसे रामचन्द्र जी की सहायता थी इस ने लक्ष्मण जी के क्रोध को भी शान्त किया था जब कि वे किष्किन्धा में सुग्रीव को लिवाने को आये थे ॥

‡ छूटे केश न देह सँभारा—इसी प्रकार कामदेव के भस्म होने पर उस की स्त्री रति की दशा को कविवर कालिदास कुमार संभव में यों लिखते हैं ॥

श्लोक—अथ सा पुनरेव विह्वला, वसुधा लिंगन धूसरा कृतिः ।
विललाप विकीर्णमूर्द्धजा, समदुःखा मिव कुर्वती स्थलीम् ॥

अर्थात् वह रति फिर भी व्याकुल हो गई और पृथ्वी पर लोटने से अपने शरीर को धूलि भरा कर के तथा बालों को छुटकारे हुए इस प्रकार से विलाप करती थी कि समीप के सम्पूर्ण प्राणी उस के दुःख से दुःखी हो उठे ॥

शब्दार्थ—निज धाम = उसी के स्थान अर्थात् इन्द्रलोक । न देह सँभारा = देह की सुधबुध न रही ॥

अर्थ—रामचन्द्र जी ने वालि को उसी के निज स्थान अर्थात् इन्द्रलोक को भिजवा दिया सब पंपासर निवासी व्याकुल हो दौड़े । वालि की स्त्री तारा अनेक प्रकार से रोती हुई आई उसके बाल छूटे हुए थे और उसे देह की सुध बुध भी न थी ॥

चौ०—मैं पति †तुमहिं बहुत समझावा । काल विवश कछु मन नहि न आवा ॥
तारा विकल देखि रघुराया । दीन्ह + ज्ञान हर लीन्ही माया ॥

अर्थ—(तारा विलाप करने लगी कि) 'हे पति ! मैं ने तुम्हें बहुत समझाया था परन्तु मृत्यु के वश होने से तुम्हारे ध्यान में कुछ भी न आया' ! रामचन्द्र जी ने तारा को व्याकुल देख उस के चित्त में ज्ञान उत्पन्न कर मोह को खींच लिया ॥

चौ०—छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित यह अधम शरीरा ॥
* प्रगट सो तनु तव आगे सोवा । × जीव नित्य केहि लगि तुम रोवा ॥

† मैं पति तुमहिं बहुत समझावा—इस लकीर के ऊपर एक लकीर और इस के नीचे भी एक लकीर क्षेपक है यथा—

चौ० पुनि पुनि तासु सीस उर धरई । वदन विलोकि हृदय सो भनई ॥
अङ्गद को कछु कहन न पायहु । बीचहि सुरपुर प्रान पठायहु ॥

+ दीन्ह ज्ञान हर लीन्ही माया—

कवित्त—जौन भये ते गये तनु त्यागि कै बेनु ययाति से भूप अपारा ।
दानि दधीच से औ हरिचन्द भये सिगरे जग काल के चारा ॥
सोच करै केहिका 'ललिते' यह झूठइ है भव को व्यवहारा ।
देखु सबै जग भौन बिचारि कै कौन को सोच करै अब तारा ॥

* प्रगट सो तनु तव आगे सोवा—रामचन्द्र जी ने तारा को समझाया कि प्राणी के मरने पर सोच करना वृथा है कारण एक तो लोग शरीर के लिये कदाचित् सोच करें तो वह तो कुछ मरता नहीं परन्तु नाशवान् होने के कारण यदि प्राण निकलने पर रख छोड़ा जावे तो नष्ट हो जायगा जैसा कहा है—

श्लोक—अनित्यानि शरीराणि विभवोनैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्म संग्रहः ॥

अर्थात् शरीर और संपत्तियां तो अनित्य हैं और मौत सदा घेरे है इस से धर्म संग्रह करे. इस के सिवाय जो कहो कि तुम जीव के लिये रोती हो तो वह तो मरताही नहीं उस के लिये भी शोक वृथा है—

× जीव नित्य केहि लगि तुम रोवा—जैसा कि श्री मद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय में लिखा है—

(श्लोक)

अर्थ—पृथ्वी, पानी, आग, आकाश और वायु इन पांच तत्त्वों से यह नाशवान् शरीर बना है सो शरीर साक्षात् तुम्हारे आगे पड़ा हुआ है और जीव तो अविनाशी है तुम किस के लिये रोती हो, सार यह है कि यदि शरीर के लिये रोती हो तो वह अनित्य है कभी न कभी उस के पांच तत्त्व अलग अलग होवेंहींगे अर्थात् वह ठहरेगा नहीं, यदि जीव के लिये रोती हो तो उस का नाश ही नहीं होता अतएव दोनों के लिये रोना वृथा है ॥

चौ०—उपजा ज्ञान चरण तब लागी। लीन्हेसि परम भक्ति वर माँगी ॥
†उमा दारुयोषित की नाईं। सबहि नचावत राम गोसाईं ॥

शब्दार्थ—दारुयोषित (दारु = काठ + योषित = स्त्री) = काठ की स्त्री अर्थात् कठपुतली ॥

अर्थ—ज्ञान के उत्पन्न होते ही वह रामचन्द्र जी के चरणों में गिरी और उन से अनन्य भक्ति का वरदान मांग लिया। (महादेव जी कहते हैं कि) हे पार्वती! गोस्वामी रामचन्द्र जी सब प्राणियों को कठपुतली की नाईं नचाते हैं ॥

चौ०—तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतककर्म विधिवत सब कीन्हा ॥
राम कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवहि जाई ॥
रघुपति चरण नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा ॥

अर्थ—तब रामचन्द्र जी ने सुग्रीव से वालि की क्रिया करने को कहा, जिसे उस ने विधान सहित की। फिर रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण से समझा कर कहा कि तुम जाकर सुग्रीव को राजतिलक करो (परन्तु अंगद को साथ ही साथ युवराज बना देना क्योंकि वालि मुझ से मरते समय ऐसी प्रार्थना कर गया है)। तब सब के सब रामचन्द्र जी के चरणों पर सीस नवा उन की आज्ञानुसार चल खड़े हुए ॥

दोहा—लछिमन तुरत बुलायऊ, पुरजन विप्र समाज।
राज दीन्ह सुग्रीव कहँ, अंगद कहँ युवराज ॥ १२ ॥

श्लोक—नैनं छिंदंति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयं तापो, न शोषयति मारुतः ॥

अर्थात् जीव को न तो हथियार काट सक्ते, न इसे अग्नि जला सक्ती, न इसे पानी नष्ट कर सक्ता और न हवा सुखा सक्ती है अर्थात् वह तो सदा सर्वकाल बना रहता है ॥

† उमा दारुयोषित की नाईं। सबहि नचावत राम गोसाईं—देखो अयोध्या कांड श्री विनायकी टीका पृ० १८९ में 'जग पेखन तुम देखन हारे' का अर्थ व टिप्पणी।

अर्थ—लक्ष्मण ने शीघ्र ही सब नगर निवासियों को ब्राह्मणों समेत बुलाया और वहां सुग्रीव को राजतिलक करके अंगद को युवराज बना दिया ॥

चौ०—उमा राम सम हित जगमाहीं । गुरु पितु मातु बन्धु प्रभु नाहीं ॥
सुर नर मुनि सब की यह रीती । स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥

अर्थ—(शिव जी कहते हैं कि) हे पार्वती ! संसार में रामचन्द्र जी के समान हितकारी न तो गुरु, न पिता माता, न भाई और न स्वामी हैं । मनुष्य, मुनि और देवता इन सब का यही व्यवहार है कि ये अपने ही मतलब के निमित्त दूसरों से प्रीति करते हैं ॥

चौ०—वालि त्रास व्याकुल दिन राती । तन बहु व्रण चिन्ता जरु छाती ॥
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ । अति कोमल रघुबीर सुभाऊ ॥

शब्दार्थ—व्रण = घाव (बँदर खत) ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी का बड़ा नम्र स्वभाव है, देखो तो उस सुग्रीव को उन्हों ने सब बन्दरों का राजा बना दिया जो वालि के डर से दिन रात दुखी रहता था, जिस के शरीर में बहुत से घाव लगे थे और जिस का हृदय चिन्ता के मारे जला करता था ॥

चौ०—जानत हू अस प्रभु परिहरहीं । काहे न विपति जाल नर परहीं ॥
पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बुलाई । *बहु प्रकार नृपनीति सिखाई ॥

अर्थ—जो लोग जानबूझ करके भी ऐसे परमेश्वर को भूल जाते हैं वे मनुष्य नाना आपत्तियों में क्यों न पड़ें (अर्थात् अवश्य पड़ेंगे) । फिर रामचन्द्र जी ने सुग्रीव को बुलाकर राजनीति में बहुत सिखापन दिया ॥

---

* बहु प्रकार नृपनीति सिखाई—राजनीति थोड़े में तो यों है—

श्लोक—उत्खातान् प्रतिरोपयन् कुसुमितां श्चिन्वल्लँघून्वर्द्धयन् ।
कुब्जान् कंटकिनो बहिर्निगमयन् बिश्लेषयन् संहतान् ॥
प्रोत्तुंगान् नमयन्नतान् समुदयन् ग्लानान् मुहःसेचयन् ।
मालाकार इव प्रयोग निपुणो राजा चिरंजीवति ॥

अर्थात् जिस प्रकार माली बाग़ में उखड़े पेड़ों को लगाता, फले हुओं को नोचता, छोटों को बढ़ाता, कटीले और कुबड़ों को बाहर निकालता, सघनों को छाँटता, उन्नतों को लचाता और लचे हुओं को उठाता है उसी प्रकार जो राजा अपनी प्रजा के साथ ऐसी ही चतुराई से बर्त्ताव करता है वह बहुत काल तक राज्य करता है ॥

विस्तारपूर्वक राजनीति के लिये भोज प्रबन्धसार, शुक नीति और कामन्दकीय नीतिसार आदि देखो ॥

चौ०—कहप्रभु सुन सुग्रीव *हरीसा। ‡ पुर न जाउँ दशचारि बरीसा॥
गत ग्रीषम वर्षा ऋतु आई। रहिहौं निकट शैल पर छाई॥

अर्थ—रामचन्द्र जी बोले कि हे बानरराज सुग्रीव! सुनो, मैं चौदह वर्ष तक नगर में प्रवेश न करूंगा। ग्रीष्म ऋतु बीत कर वर्षा का आरंभ हुआ है इसहेतु समीप ही पर्वत पर पर्णकुटी बनाकर ठहर जाऊंगा॥

चौ०—अंगद सहित करहु तुम राजू। संतत हृदय राखि मम काजू॥
जब सुग्रीव भवन फिरिआये। † राम प्रवर्षण गिरि पर छाये॥

---

* हरीसा—शुद्धरूप हरीशा (हरि = बानर + ईश = राजा) = बानर राज, 'हरि' शब्द के अनेक अर्थ हैं उन में से बहुतेरे नीचे के श्लोक में दिये हैं यथा—

श्लोक—हरिर्विष्णावहा विन्द्रे भेके सिंहे हये रवौ।
चन्द्रे कीरे प्लवंगे च यमे वाते च कीर्त्तितः॥

अर्थात् हरि शब्द का उपयोग विष्णु, सर्प, इन्द्र, मेंढक, सिंह घोड़ा, सूर्य, चन्द्र तोता, बन्दर, यमराज और वायु के अर्थ में होता है, इनके सिवाय और भी अनेक अर्थ हैं॥

'हरि' शब्द पर श्लेष देखो रामायण बालकाण्ड श्री विनायकी टीका 'नीक दीन्ह हरि सुन्दर ताई'

‡ पुर न जाउँ दशचारि बरीसा—देखो अयोध्याकांड में श्री विनायकी टीका की सूचना पृ० १३२

† राम प्रवर्षण गिरि पर छाये—प्रवर्षण [प्र = विशेष करके + वर्षण = बरसना] = वह स्थान जिस पर पानी विशेष बरसे। रामरत्नाकर रामायण में 'प्रवर्षण गिरि' का वर्णन यों है—

चौ०—नाम प्रवर्षण गिरि विख्याता। तेहि पर चढ़ देखत युग ख्याता॥
गुहा एक तहँ विशद विशाला। उपजायक अनंद सब काला॥
लक्ष्मण प्रति कह कृपानिधाना। इहाँ वास मेरे मन माना॥

दोहा—विटप मनोहर विहँग मृग, बोलत सुखद समीर।
कछु ऊंची द्वारे शिला, प्रविश न पावे नीर॥

चौ०—उत्तरदिशि इक शृंग सुहायो। मानहुँ नील मेघ झुक आयो॥
श्वेत शृंग दक्षिण दिशि सोहै। जो कैलाश सरिस मन मोहै॥
पूरब दिशि इक नदी सुहाई। पंक रहित गंगा सम गाई॥
तीर तीर बहु तरुवर लागे। क्रीड़ित विहँग प्रेम अनुरागे॥
विविधि भाँति पंकज छबि देहीं। चक्रवाक क्रीड़ित सुख पेही॥ (इहां)

अर्थ—तुम अंगद के साथ पंपापुर का राज्य करो परन्तु सदैव मेरे कार्य को मन से न भूलना। जब सुग्रीव नगर को लौट गये तब रामचन्द्र जी प्रवर्षण पर्वत पर जा बसे॥

दो०—प्रथमहिं देवन गिरि गुहा, राखी रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछुक दिन, बास करहिंगे आइ॥ १३॥

अर्थ—देवताओं ने पहिले ही से प्रवर्षण गिरि की कन्दराओं को मनोहर बना रक्खा था इस अभिप्राय से कि दया सागर रामचन्द्र जी यहां पर कुछ दिन आ रहेंगे॥

चौ०—सुन्दर बन कुसुमित तरु शोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥
कन्द मूल फल पत्र सुहाये। भये बहुत जब तें प्रभु आये॥

शब्दार्थ—कुसुमित = फूले हुए। चंचरीक = भौंरा॥

अर्थ—उस सुहावने बन में फूलते हुए वृक्षों की अनोखी छटा थी उन पर मधु के लोभी भौंरे गुंजार रहे थे। वहां पर कन्द मूल फल और पत्ते भी सुहावने लगते थे जो रामचन्द्र जी के आ बसने से बहुत हो गये थे॥

चौ०—देखि मनोहर शैल अनूपा। रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा॥
मधुकर खग मृग तनुधरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु की सेवा॥

अर्थ—देवताओं के राजा श्री रामचन्द्र जी उस उपमा रहित सुन्दर प्रवर्षण गिरि को देख अपने भाई समेत वहां रहने लगे। देवगण भौंरों पक्षियों और पशुओं का शरीर धारण कर तथा सिद्ध और मुनि भी श्री रामचन्द्र जी की सेवा करते थे॥

चौ०—* मंगलरूप भयउ बन तब तैं। कीन्ह निवास रमापति जब तैं॥
फटिक शिला अति शुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ दोउ भाई॥

इहाँ वास अति सुखद विचारी। बसिये चार मास प्रिय कारी॥
किष्किन्धा पुनि निकटहि जानो। अवध भरत पुर मंगल मानो॥
अब सुग्रीव राजपद पाई। रुमा सहित भोगहि ठकुराई॥
दोहा—अस कहि भ्राता सहित प्रभु, वास कियो तेहि ठौर।
निधि मय गिरि देख्यो तऊ, सिय बिन सुखद न और॥

* मंगलरूप भयउ बन तब तैं। कीन्ह निवास रमापति जब तैं—देखो रघुवंश सर्ग दूसरा—

श्लोक—शशाम वृष्ट्यापि विना दवाग्नि रासीद्विशेषा फल पुष्प वृद्धिः।
ऊनं न सत्वेष्वधिको बबाधे, तस्मिन् वनं गोप्तरि गाहमाने॥ १४॥

अर्थात् रक्षक याने राजा या पुण्यात्मा प्राणी के प्रवेश करते ही दावाग्नि बिना जल वृष्टि के ही शान्त हो जाती है और वृक्षों में फल फूल अधिकता से लगते हैं तथा

शब्दार्थ—फटिक (शुद्ध रूप स्फटिक-सं० स्फट = फटना) = टूटा हुआ, बिल्लौरी पत्थर ॥

अर्थ—जब से लक्ष्मीपति श्री रामचन्द्र जी ने वहाँ आकर निवास किया तभी से वह बन मंगलरूप हो गया। प्रवर्षण गिरि पर रामचन्द्र और लक्ष्मण बहुत ही सफ़ेद सुहावनी पहाड़ से टूटी हुई शिला पर आनन्दपूर्वक बैठे थे ॥

चौ०—कहत अनुज सन कथा अनेका। भक्ति विरति नृप नीति विवेका ॥

‡ वर्षाकाल मेघ नभ छाये। गरजत लागत परम सुहाये ॥

बलवान् पशु निर्बल को नहीं सताते अर्थात् मिलजुलकर रहते हैं जैसा कि महाराजा दिलीप के बन प्रवेश करने पर हुआ ॥

देखो विनायकी टीका में अगस्त्य ऋषि के आश्रम के वर्णन में 'बैर न करहिं प्रीति सब ही तें' की टिप्पणी में ॥

‡ वर्षाकाल मेघ नभ छाये—राग मलार

उमड़ि घुमड़ि बादरवा छाये।
तड़िता दमक कड़क घन गरजत नभ सों नीर गँभीर बहाये ॥
बोलत मोर जोर सोरन सों कोकिल बक चातक मन भाये।
'सिंह जुझार' देखि हरियाली मनहुँ इन्द्र ने रँग बरसाये ॥

और भी—वर्षा और शरद ऋतु के वर्णन में गोस्वामी जी ने बहुधा श्रीमद्भागवत दशमस्कंध के २०वें अध्याय का आधार लिया है, उस के बहुतेरे श्लोक तो चौपाइयों से मिलते हैं और अनेकों में कुछ आधार मात्र उन श्लोकों से है शेष महात्मा जी ने अपनी बुद्धि और चतुराई से उत्तम रचना की है उदाहरणार्थ एक दो श्लोक लिखे जाते हैं यथा—

श्लोक—मेघा गमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनंदन् शिखंडिनः।
गृहेषु तप्ता निर्विंणा यथाऽच्युत जनाऽगमे ॥ २० ॥

दोहा—लक्ष्मण देखहु मोरगण, नाचत वारिद पेखि।
गृही विरति रत हर्ष जस, विष्णु भक्त कहँ देखि ॥

श्लोक—आसन्नुत्पथ वाहिन्यः क्षुद्र नद्योऽनु शुष्यती।
पुंसो यथाऽस्वतंत्रस्य देह द्रविण संपदः ॥ १० ॥

चौ०—क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई। जस थोरे धन खल बौराई।

श्लोक—गिरयो वर्ष धाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षज चेतसः ॥ १५ ॥

चौ०—बुंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के वचन संत सह जैसे ॥

[शरद ऋतु]

अर्थ—रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण से भक्ति, वैराग्य, राजनीति और ज्ञान इन सब के विषय बहुत सी कथायें कहते थे। वर्षा ऋतु के समय आकाश में उमड़े हुए बादल गर्जते और बहुत ही शोभायमान लगते हैं॥

दोहा—लक्ष्मण देखहु मोरगण, नाचत वारिद पेखि।
गृही विरति रत हर्ष जस, विष्णु भक्त कहँ देखि॥ १४॥

शब्दार्थ—वारिद (वारि = पानी + द = देना) = पानी के देने वाले अर्थात् बादल। पेखि (शुद्धरूप प्रेक्ष) = देख, निरख॥

अर्थ—(रामचन्द्र जी कहते हैं कि) हे लक्ष्मण देखो! मोर पक्षियों के झुंड के झुंड मेघ को देख देख कर नाचते हैं जिस प्रकार गृहस्थ लोग परमेश्वर के भक्त को देख (वैराग्य में चित्त लगा) आनंदित होते हैं॥

चौ०—* घन घमंड नभ गरजत घोरा। † प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥
दामिनि दमकि रह न घनमाहीं। × खल की प्रीति यथा थिर नाहीं॥

॥ शरद् ऋतु॥

श्लोक - शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः।
भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योग निषेवया॥ ३३

चौ०—सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥

श्लोक—गाधिवारि चरास्ताप मविन्दन् शरदर्कजम्।
यथा दरिद्रः कृपणाः कुटुम्बय विजितेन्द्रियः॥ ३८॥

चौ०—जल संकोच विकल भये मीना। विबिधि कुटुम्बी जिमि धन हीना॥ इत्यादि

* घन घमंड नभ गरजत घोरा—

कवित्त—घुमड़ि घनेरे घहरात घन घेर घेर झूम झूम घूम घूम गंहित घमंड है।
रैनि अँधियारी कारी कारी भयकारी भारी जोरन झकोरै पौन प्रबल प्रचण्ड है॥
दादुर दिमाक दरसावैं दिशि चारौं भले झिल्ली झनकारैं सुर दीरघ अखंड है।
'रसिक बिहारी' दुति दामिनी दमक्कै देखि अबला ससंकै यह पावस उदंड है॥

† प्रिया हीन डरपत मन मोरा—

सवया—देखिये लक्ष्मण ये नभ में छण ही छण में छनदा चमकावे।
त्यौं 'ललिते' गरजैं बकपाँति ले जोर जुरे जुगनू जमकावे॥
झोरि झरीन समीरन सो महिबोरि लवंग लता लमकावे।
सीय बिना बल हीन बिचारि कै वीर बली धुरवा धमकावे॥

× खल की प्रीति यथा थिर नाहीं- जैसा कि सभा बिलास में लिखा है:—

दोहा—बिनसत बार न लागही, ओछे जन की प्रीति।
अम्बर डम्बर सांझ के, ज्यों बालू की भीति॥

अर्थ—आकाश में बादल घुमड़ कर बड़ी भारी गर्जना करते हैं, जानकी के बिना मेरा मन भय खाता है। बिजली की चमक बादलों में स्थिर नहीं रहती जैसे दुर्जन मनुष्य की मैत्री सदा एक सी नहीं रहती ॥

चौ०—वर्षहिं जलद भूमि नियराये। यथा नवहिं बुध विद्या पाये ॥
बुंद अघात सहहिं गिरि कैसे। *खल के बचन संत सह जैसे॥

अर्थ—बादल (पानी के बोझ के कारण) धरती के समीप आनकर वर्षा करते हैं जैसे बुद्धिमान् मनुष्य विद्या प्राप्त कर नम्र हो जाते हैं। पर्वत वर्षा की बूंदों की चोट को कैसे सहते हैं जैसे संत लोग दुर्जन के कठोर वचनों को सहते हैं ॥

चौ०—क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई। जस थोरे धन खल बौराई ॥
भूमि परत भा डाबर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी ॥

अर्थ—छोटी नदियां पानी बरसते ही ऐसी उमड़ उठती हैं जैसे नीच थोड़ा ही द्रव्य पाकर अपने बराबर किसी को नहीं लेखता। पानी पृथ्वी पर पड़ते ही गँदला हो जाता है जैसे माया जीव को (घेर कर) मलीन कर देती है (अर्थात् बादलों का पानी निर्मल रहता है परंतु वही पानी पृथ्वी पर गिर कर धूल आदि के संयोग से गढ़ूला पानी कहलाता है इसी प्रकार जीव अर्थात् आत्मा तो शुद्ध है परन्तु अज्ञान आदि के संसर्ग से वही जीव देहाभिमानी हो जाता है) ॥

चौ—सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सद्‌गुण सज्जन पहँ आवा॥
सरिताजल जलनिधि महँ जाई। होइ अचल जिमि जन हरि पाई ॥

अर्थ—पानी दूर दूर से बह, इकट्ठा हो, तालाबों में भर जाता है जैसे सद्गुण सुपुरुषों को प्राप्त होते हैं। नदियों का पानी समुद्र में जाकर अचल हो जाता है जैसे भक्त परमेश्वर को पाकर संतुष्ट हो जाता है। भाव यह कि जैसे नदियों का पानी सदैव बहता ही रहता है परन्तु समुद्र में पहुँचकर स्थिर हो जाता है इसी प्रकार मनुष्य का मन भी यहां वहां भटकता फिरता है परन्तु ईश्वर की भक्ति पाने से शान्त हो रहता है ॥

---

* खल के वचन सन्त सह जैसे—दोहावली रामायण से—
दोहा—बदन तूण जिह्वा धनुष, वचन पवन गम तीर।
साधुन के लागे नहीं, छमा सनाह शरीर॥

दोहा—हरित भूमि तृण संकुलित, समुझि पर नहिं पंथ।
जिमि पाखंड विवाद ते, + लुप्त भये सद ग्रन्थ॥ १५॥

अर्थ—घास से भरी हुई हरी धरती के कारण मार्ग सूझ नहीं पड़ता जैसे नास्तिक मनुष्यों के झगड़े से अच्छे अच्छे ग्रन्थों का लोप हो जाता है॥

चौ०—दादुर धुनि चहुँ दिशा सुहाई। वेद पढ़हिं जनु वटु समुदाई॥
नव पल्लव मय विटप अनेका। साधक मन जस मिले विवेका॥

अर्थ—चारों ओर मेंडक सुहावनी बोली बोलते हैं मानो ब्राह्मणों के लड़कों के समुदाय वेद पढ़ते हैं। बहुतेरे वृक्षों में नये नये पत्ते फूट निकले जैसे सज्जनों के मन विवेक के कारण नवीन शुद्धता प्राप्त करते हैं॥

चौ०—अर्क जवास पात बिन भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥
खोजत पंथ मिलइ नहिं धूरी। कर क्रोध जिमि धर्महिं दूरी॥

अर्थ—(परन्तु) मन्दार और हिंगुआ नामी वृक्षों के पत्ते झड़ गये जैसे अच्छे राजा के प्रबन्ध में दुष्ट मनुष्य का धन्धा उठ जाता है। रास्ते में ढूंढ़ों तो धूल नाम को भी नहीं मिलती जैसे क्रोध धर्म का नाश कर देता है॥

चौ०—ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी की संपति जैसी॥
निशि तम घन खद्योत विराजा। जनु दंभिन कर जुरा समाजा॥

अर्थ—खेती से भरी हुई पृथ्वी कैसी शोभा देती है जैसे उपकारी मनुष्य का धन। रात्रि के अधिक अंधकार में जुगनू अधिक प्रकाश करते हैं मानो (अज्ञान स्थल पाकर) पाखंडियों का समाज एकत्र हो रहा हो॥

चौ०—महा वृष्टि चलि फूटि कियारी। * जिमि स्वतंत्र भये बिगरहिं नारी॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥

+ लुप्त भये सद ग्रन्थ—षोड़श रामायण में कलिधर्माधर्म निरूपण से उद्धृत—

दोहा—सकल धर्म विपरीति कलि, कलपित कोटि कुपंथ।
पुण्य पराइ पहार बन, दुरे पुराण सुग्रन्थ॥

* जिमि स्वतंत्र भये, बिगरहिं नारी—मनुस्मृति के नवें अध्याय में लिखा है—

श्लोक—पिता रक्षति कौमारे, भर्त्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा, न स्त्री स्वातंत्र्य मर्हति॥ ३॥

अर्थात् स्त्री की कुमारी अवस्था में पिता रक्षा करता है, युवा अवस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करते हैं। स्त्री को स्वतंत्र रहना योग्य नहीं॥

अर्थ—अधिक पानी बरसने के कारण क्यारी फूटकर पानी वह निकलता है जैसे स्त्री छुटकारा पाने से बिगड़ जाती है। चतुर किसान लोग खेतों को इस प्रकार नींदते हैं (अर्थात् घास आदि उखाड़ते हैं) जिस प्रकार बुद्धिमान् ममता घमण्ड और मान का त्याग कर देते हैं ॥

चौ०—*देखिय चक्रवाक खग नाहीं। कलिहिं पाइ जिमि धर्म पराहीं ॥
ऊसर बरसै तृण नहिं जामा। संत हृदय जस उपज न कामा ॥

शब्दार्थ—ऊसर (सं० ऊषर) = ऐसी धरती जिस में कुछ नहीं उपजता ॥

अर्थ—(इस ऋतु में) चकई चकवा पक्षी नहीं दिखाई देते जिस प्रकार धर्म कलिकाल पाकर नष्ट हो जाता है। बंजर धरती पर वर्षा होने पर भी घास नहीं जमती जैसे विष्णु के भक्त के हृदय में काम उत्पन्न नहीं होता ॥

चौ०—विविधि जंतु संकुल महि भ्राजा। †बढ़ै प्रजा जिमि पाइ सुराजा ॥
जहँ तहँ पथिक रहे थकि नाना। जिमि इंद्रिय गण उपजे ज्ञाना ॥

---

* देखिय चक्रवाक खग नाहीं—कोई २ पक्षी प्रति वर्ष दूर २ तक यात्रा किया करते हैं और इसीहेतु इन्हें 'यात्री पक्षी' कहते हैं. अबाबील और खंजन पक्षी प्रति वर्ष ग्रीष्म ऋतु के आरंभ में समशीतोष्ण देशों को चले जाते हैं. वहीं पर अंडे देकर बच्चों का पोषण करते और शरद ऋतु का आगमन होते ही जब उन्हें कीड़ों का भक्ष्य नहीं मिलता तो दक्षिण के उष्ण देशों को लौट आते हैं. चक्रवाक बुलबुल, बटेर तथा और २ पक्षी भी स्थानान्तर होते हैं. इस के विपरीत बहुत से पक्षी हिम ऋतु के लगते ही शीत तर देशों से यहां आजाते और फिर ग्रीष्म के आरंभ में लौट जाते हैं जैसे बतख़, कुकरी, हंस आदि. ये प्रति वर्ष शरद ऋतु में हिमालय और उत्तर के हिम देशों से भरत खंड में आकर और जाड़े भर रह कर मार्च और अप्रेल में उत्तरीय देशों को लौट जाते हैं. कलियुग में धर्म क्षीण होने की छटा इस दोहे में दरसाई है. जैसे—

दोहा—दंभ सहित सब धर्म कलि, छल समेत व्यवहार।
स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहार अचार ॥

† बढ़ै प्रजा जिमि पाइ सुराजा—अच्छे राजा के राज्य में सुख चैन, संपत्ति, धर्म आदि सब बढ़ते हैं और प्रजा को सुख होने से उन की संख्या भी बढ़ती है. मर्दुमशुमारी से इस बात की जांच हो जाती है कि मनुष्यों की संख्या, धन संपत्ति, विद्या आदि सभी में वृद्धि हुई या घटती. देखो, श्री रामचन्द्र जी के राज्य में सुख, संपति और जन संख्या सभी में बहुत ही वृद्धि हुई थी, जैसे (उत्तर काण्ड में)।

दोहा—अवधपुरी बासीन्ह कर, सुख संपदा समाज।
सहस शेष नहिं कहि सकहिं, जहँ नृप राम बिराज ॥

अर्थ—पृथ्वी बहुत से जीवधारियों से भरकर शोभा को प्राप्त होती है जैसे अच्छे राजा के राज्य में प्रजा बढ़ती है। बहुतेरे बटोही जहां के तहां टिके रहे ज्यों ज्ञान पाने से इन्द्रियां स्थिर हो जाती हैं॥

दो०—कबहुँ प्रबल चाले मरुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कुपूत कुल ऊपजे, संपति धर्म नशाहिं॥

अर्थ—कभी २ तो वायु ऐसे वेग से चलती है कि जिससे आकाश में मेघ नाम को भी नहीं रहते हैं जैसे कुल में बुरे लड़के के होने से धन धर्म आदि नष्ट हो जाते हैं॥

दो०—कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
†बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग॥ १६॥

अर्थ— कभी दिन के समय (बादलों के घिर आने से) बड़ा अन्धकार छा जाता है और कभी सूर्य दिखाई देने लगता है जिस प्रकार अच्छी संगति से बुद्धि बढ़ती है और बुरी संगति से वही नष्ट हो जाती है॥

चौ०—वर्षा विगत शरद ऋतु आई। देखहु लक्ष्मण परम सुहाई॥
फूले कास सकल महि छाई। जनु वर्षा कृत प्रगट बुढ़ाई॥

अर्थ—(रामचन्द्र जी कहते हैं कि) हे लक्ष्मण! देखो वर्षा के बीत जाने पर अत्यन्त ही सुहावनी शरद ऋतु का आरम्भ हुआ। फूले हुए कास संपूर्ण पृथ्वी में छाये हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो वर्षा ऋतु ने अपना बुढ़ापा प्रकट किया हो। (वर्षा ऋतु में कास के फूल स्वच्छ सफेद बालों के सदृश दिखाई देते हैं इसीहेतु कवि ने चतुराई से वर्षा का अन्त सूचित किया है)॥

चौ०—‡उदित अगस्त्य पंथ जल शोषा। जिमि लोभहि शोषै संतोषा॥
सरिता सर जल निर्मल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥

---

† बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग—लिखा है उत्तर काण्ड रामायण में
दो०—संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कवि कोविदहु, श्रुति पुराण सद्ग्रंथ॥

‡ उदित अगस्त्य पंथ जल शोषा—
अगस्त्य का तारा दक्षिण ध्रुव के समीप है. इस का प्रकाश घटता बढ़ता है और यह रंग भी बदलता रहता है दक्षिण गोलार्द्ध में इसे खाली आंख से ढूँढ़ लेने में कुछ कठिनाई नहीं पड़ती. यह पहिली प्रति के २० तारों में से है और इस तारे का नाम अगस्त्य ऋषि के पीछे पड़ा ऐसा प्रतीति होता है. यह आकाश में कई मास तक दृष्टिगोचर होता रहता है.

अर्थ—अगस्त तारे के ऊगने से मार्ग पानी को सोख लेता है जैसे संतोष होने से लोभ मिट जाता है। नदी और तालाब स्वच्छ जल से सुशोभित होते हैं जैसे सज्जनों का मन अहंकार और ममता आदि को त्याग कर शोभता है॥

चौ०—रस रस शोष सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी॥
+जानि शरद ऋतु खंजन आये। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये॥

जबलपुर में इस का उदय प्रति वर्ष २२ अगस्त को और अस्त ३ मई को होता है. ज्यों २ उत्तर दक्षिण को जाओ त्यों २ इस के लोप दर्शन के काल में अंतर पड़ता जाता है मार्ग का जल सूखना, सरोवरों का जल निर्मल होना, वर्षा ऋतु के दूषित जल का शुद्ध होना, कमल कास आदि खिलना इस तारे के उदय होने के लगभग होता है. इसहेतु इन सब का कारण-भूत अगस्त्य तारा ही कहा जाता है. यह निर्विवाद है. अगस्त्य ऋषि संबंधी कथाओं का जो पुराणों में उल्लेख है उन में से बहुत सी अगस्त्य तारे से संबंध रखती हैं और कुछ भूगोल संबंधी भी हैं भारत वर्ष के दक्षिण गोलार्द्ध में केवल जल ही होने के कारण तथा समुद्र यान में जाने वालों को नीचे जल और ऊपर आकाश में दक्षिण गोलार्द्ध के प्रसिद्ध अगस्त्य तारा को देखने से अगस्त्य को समुद्र के ईष वरुण का पुत्र मानना और 'कुंभ' (राशिय घट) से जन्म हुआ समझना स्वाभाविक ही है. अगस्त्य ऋषि का दक्षिण में जाके रहने तथा अगस्त तारे की दक्षिण गोलार्द्ध में स्थिति से एक ही अभिप्राय है. पौराणिक कथाओं से ऐसा प्रतीति होता है कि किसी पूर्वकाल में विंध्य पर्वत की ऊंची २ अगम्य चोटियों का ह्रास होगया था तथा समुद्र का जल हट कर कुछ काल के लिये पृथ्वी दृष्टि गोचर होने लगी थी और पुनः कुछ काल पश्चात् पूर्ववत् समुद्र हो गया था, क्या आश्चर्य है कि इन घटनाओं के अगस्त्य ऋषि तथा तारे के समकालीन होने से उन की की हुई मान ली गई हो. पुराने काल में लोगों का ऐसा विश्वास था कि जिस समय अगस्त्य तारे का उदय हो तब उसे अर्घ्य देकर दर्शन करने से रोग नाश होते हैं. वर्षा के समाप्ति काल के लगभग कुंआर कार्त्तिक के ज्वर उद्भव होना तथा उस से बचने के हेतु अगस्त्य मास में उदित अगस्त्य की प्रार्थना करना स्वाभाविक है. वाराह मिहिर कृत वृहत संहिता में लिखा है कि अगस्त्य का तारा रुक्ष हो तो वर्षा नहीं होती, धूम्र वर्ण हो तो गौओं को अशुभ करता है. चंचल हो तो प्रजा में भय होता है, मजीठ के समान लाल रंग हो तो दुर्भिक्ष पड़ता है और युद्ध होते हैं और छोटा सा हो तो नगरों पर राजाओं का आक्रमण होता है, चांदी अथवा स्फटिक के समान श्वेत वर्ण हो और निर्मल हो और अपने किरण समूह करके मानो भूमि को तृप्त कर रहा है ऐसा देख पड़े तो भूमि पर बहुत अन्न हो और प्रजा निर्भय निरोग रहे उल्का या धूमकेतु करके ताड़ित हो तो दुर्भिक्ष मरई पड़ती है. इसे अंग्रेजी में CANOPUS कहते हैं॥

+ जानि शरद ऋतु खंजन आये-'देखिय चक्रवाक खग नाहीं' की टिप्पणी देखो

अर्थ—नदी तालाब आदि का पानी धीरे २ घटता जाता है जैसे ज्ञानवान् क्रम क्रम से ममता को त्याग करते हैं। शरद ऋतु का आगमन देख कौड़ीले पक्षी भी आते हैं जैसे अवसर पाकर अच्छे कार्य बहुत सुहावने लगते हैं ॥

चौ०—पंक न रेणु सोह अस धरणी। नीति निपुण नृपकी जस करणी ॥
जल संकोच विकल भइ मीना। *विविध कुटुम्बी जिमि धन हीना ॥

अर्थ—कीचड़ से रहित (निर्मल) और (रेणु रहित स्वच्छ) धरती ऐसी शोभायमान् होती है जिस प्रकार न्यायी राजा के अच्छे काम। मछलियां जल के कम होने से बेचैन हुईं जिस प्रकार बहुत से बाल बच्चे वाला मनुष्य कंगाली के कारण दुःखित होता है ॥

चौ०—बिन घन निर्मल सोह अकाशा। जिमि हरिजन परिहर सब आशा ॥
कहुँ कहुँ वृष्टि शारदी थोरी। ‡कोउ इक पाव भक्ति जिमि मोरी ॥

अर्थ—मेघों के न रहने से निर्मल आकाश ऐसा शोभायमान् दिखाई देता है जैसे ईश्वर भक्त ममता मोह त्याग कर शोभा को प्राप्त होता है। किसी किसी स्थान में शरद ऋतु के समय भी थोड़ासा पानी बरस जाता है जैसे किसी बिरले पुरुष को मेरी भक्ति मिलती है ॥

---

* विविधि कुटुम्बी जिमि धन हीना
'ज्ञानवंत हठ गहे निधन परवार बढ़ावे। बँधुवा करे गुमान धनी सेवक ह्वै धाव'

‡ कोउ एक पाव भक्ति जिमि मोरी—जैसा कि श्री मद्भगवद्गीता के छठवें अध्याय में कहा है—

श्लोक—मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्तितत्वतः ॥ ३ ॥

अर्थात् (श्री कृष्ण जी बोले) हजारों मनुष्यों में से कोई एक बिरला सिद्धि के हेतु यत्न करता है और इस प्रकार से यत्न करते हुए सिद्धों में से कोई एक मुझ को ठीक २ जानता है ॥३॥

और भी—

राग गौरी—प्राणी को हरि यश मन नहिं आवै।
अहनिशि मगन रहे माया में कहु कैसे गुण गावै ॥
पूत मीत माया ममता सों यहि विधि आप बँधावै।
मृग तृष्णा जिमि झूठो यह जग देखि तासु उठि धावै ॥
भुक्ति मुक्ति का कारण स्वामी मूढ़ ताहि बिसरावै।
जन 'नानक, कोटिन में कोई भजन राम को पावै ॥

दो०—चले हर्ष तजि नगर नृप, तापस वणिक भिखारि।
जिमि हरि भक्ती पाइ +जन, तजहिं आश्रमी चारि ॥ १७ ॥

अन्वय—नृप तापस वणिक भिखारि (शरद ऋतु पाइ) नगर तजि हरषि चले। जिमि चारि आश्रमी जनहरि भक्ती पाइ (निज आश्रम) तजहिं ॥

अर्थ—राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिक्षुक शरद ऋतु के आने से अपना अपना टिकाऊ स्थान छोड़ आनन्द पूर्वक चले, जैसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वाणप्रस्थ और सन्यासी ये चारों प्रकार के मनुष्य भक्ति के पाने से अपना अपना आश्रम छोड़ देते हैं ॥

चौ०—×सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। जिमि हरि शरण न एकौ बाधा ॥
फूले कमल सोह सर कैसे। निर्गुण ब्रह्म सगुण भये जैसे ॥

अर्थ—जहाँ गहरा पानी भरा है वहाँ मछलियां बड़े सुख चैन से रहती हैं जैसे परमेश्वर का आसरा लेने से दुःख नाम को भी नहीं रहता। तालाब कमलों के फूलने से ऐसा शोभायमान् होगया है जैसे गुण रहित ब्रह्म सगुण हो शोभा को प्राप्त होता है (परब्रह्म परमात्मा जो सत, रज, तम इन तीनों गुणों से परे है और यद्यपि सब संसार में व्याप्त है तौ भी दृष्टि गोचर नहीं होता परन्तु योगियों को ध्यान से समझ पड़ता है और साधारण लोगों को तो तब दिखाई देता है जब किसी विशेष कारण से

+ 'जिमि हरि भक्ती पाइ जन' का पाठान्तर 'जिमि हरि भक्ति पाइ श्रम' भी है।

× सुखी मीन जहँ नीर अगाधा—उथले जल के सूख जाने तथा उस में से मनुष्य, पक्षी आदि द्वारा पकड़े जाने का भय मछलियों को रहता है; परन्तु अथाह जल में पूर्वोक्त सब बाधाओं से भय नहीं रहता इसी प्रकार साधारण देवी देवताओं की सेवा में अनेक भय रहते हैं परन्तु परमेश्वर की शरण गहने से मनुष्य सब प्रकार के भय से मुक्त होजाता है जैसा कि कबीरदास ने कहा है:—

दोहा—सब आये इस एक में, डार पात फल फूल।
कबिरा पीछे क्या रहा, गहि पकड़ा जिन मूल ॥

और भीः—

राम नाम जपतां कुतो भयं सर्वताप शमनैक भेषजं।
पश्यतात ममगात्र सन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥

अर्थात् (प्रहलाद अपने पिता जी से कहते हैं कि) राम नाम के जपने वालों को भय कहां है वह नाम तो तीनों प्रकार के दुःखों को दूर करने की दवा है हे पिता जी ! देखो तो मेरे शरीर के समीप यह आग भी पानी के तुल्य ठंडी पड़ गई ॥

राम कृष्ण आदि अवतार धारण करता है जैसे पुरैन के नीचे जल छिपा रहता है परन्तु कमल के फूलने से स्पष्ट समझ पड़ता है कि इनके नीचे जल है जिस में कमलों का बीज छिपा था और भी 'जिमि मेंहँदी के पात में लाली लखी न जाइ')

चौ०-गुंजत मधुकर निकर अनूपा। सुन्दर खग रव नाना रूपा॥
चक्रवाक मन दुख निशि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी॥

अर्थ—उपमा रहित भौंरों के झुंड शब्द कर रहे हैं और रंग बिरङ्ग के पक्षी सुहावनी वाणी बोलते हैं। रात का आगमन देख चकवा नामी पक्षी मन में दुखी होता है जैसे दूसरे का धन देख दुष्ट मनुष्य जलता है (क्योंकि रात्रि में चकवा चकवी का वियोग हो जाता है)

चौ०-चातक रटन तृषा अति ओही। जिमि सुख लहै न शंकर द्रोही॥
शरदातप निशि शशि अपहरई। संत दरश जिमि पातक टरई॥

अर्थ—बड़ा हठी पपीहा 'प्यासा २' ऐसा शब्द रटता रहता है जिस प्रकार महादेव के विमुख पुरुष को सुख नहीं मिलता चन्द्रमा शरद ऋतु के दिन की तपन को रात्रि में दूर कर देता है जिस प्रकार सज्जन के दर्शनों से पाप क्षार क्षार हो जाता है॥

चौ०-देखहिं बिधु चकोर समुदाई। चितवहि हरिजन हरि जिमि पाई॥
मशक दंश बीते हिम त्रासा। †जिमि द्विज द्रोह किये कुल नासा॥

अर्थ—चकोर पक्षियों के झुंड चन्द्रमा को निहारते हैं जैसे परमेश्वर का भक्त हरि को पाकर एकटक देखने लगता है। हेमन्त ऋतु के आगमन से मच्छड़ और डांसों का दुःख मनुष्यों को नहीं रहता जैसे ब्राह्मण के साथ बैर करने से कुल का नाशहो जाता है।

दो०-भूमि जीव संकुल रहे, गये शरद ऋतु पाइ॥
सत गुरु मिलते जाहि जिमि, संशय भ्रम समुदाइ॥१८॥

अर्थ—पृथ्वी पर जो जीव (वर्षा ऋतु में) बढ़ गये थे वे शरद ऋतु में एक भी न रहे, जिस प्रकार शंका भ्रम आदि सब के सब अच्छे गुरु के मिलने से मिट जाते हैं।

---

† जिमि द्विज द्रोह किये कुल नासा—जैसा कि कहा है:—

श्लोक—धनांता पुष्पिता गावः कुलांतो बन्धु विग्रहः।
सुखांता कर्कशा नारी, सर्वांतो ब्राह्मणो रिपुः॥

अर्थात् जिस के यहां चित्तेदार गाय हो वहां धन का नाश समझो, जहां सम्बन्धियों में विरोध हो वहां कुल का नाश जानो। जिस के घर में कर्कशा स्त्री हो उस के सुख का अन्त ही मानो और जिस ने ब्राह्मण से बैर ठाना उस का तो मानो सर्व नाश होचुका॥

सूचना- गोस्वामी तुलसीदासजी के अनूठे बुद्धिमत्ता सूचकउपदेश, जिनके कारण रामायण का महत्व बहुत ही बढ़कर समझा जाता है अनेक स्थानों में हैं परन्तु यहां पर उन्हों ने वर्षा और शरद दोनों ऋतुओं का संक्षेप में बड़ी बुद्धिमानी से भक्ति वैराग्य और राजनीतिमय कथन इतना अनुपम और मनोहर वर्णन किया है कि पंडित लोग इस भाग को प्रशंसनीय और स्मरणीय मानते हैं तथा अनेक पुस्तकों में या तो इसे उद्धृत करते हैं या इस का उदाहरण दे ग्रन्थ की प्रशंसा करते हैं॥

चौ०—वर्षागत निर्मल ऋतु आई। सुधि न तात सीता की पाई॥
एक बार कैसेउँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महँ आनौं॥

अर्थ—(फिर रामचन्द्र जी लक्ष्मण से कहने लगे) हे भाई! वर्षा तो बीत गई और स्वच्छ शरद ऋतु आन पहुँची तौ भी सीता की कोई ख़बर न मिली। (देखो) किसी भी प्रकार यदि एकही बार उनके समाचार सुन पाऊं तौ पलभर में काल को भी जीतकर उन्हें ले आऊं॥

चौ०—कतहुँ रहै जो जीवत होई। तात यतन करि आनौं सोई॥
सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोष पुर नारी॥

अर्थ—कहीं भी हो यदि जीती मिलें तो हे भाई! उन्हें किसी भी उपाय से ले आऊंगा। (क्या कहूँ) सुग्रीव भी तो मेरी सुधि भूल गये (क्यों न हो) उन्हें राज्य ख़ज़ाना नगर और उनकी स्त्री मिल गई न।

चौ०—जेहि सायक मैं मारा बाली। *तेहि शर हतौं मूढ़ कह काली॥

---

* 'तेहि शर हतौं मूढ़ कह काली, का पाठांतर 'तेहि शर हतौं मूढ़ कहँ काली' भी है इस का अर्थ यह होता है कि उस मूर्ख सुग्रीव को उसी बाण से कल मारूंगा परन्तु इस में यह शंका होती है कि रामचन्द्र जी ने अपने मित्र सुग्रीव को मारने को क्यों कहा और यदि कहा भी तो मारा क्यों नहीं? इस का समाधान पंडित लोग यों करते हैं कि जब सुग्रीव ने अपना राज्य और स्त्री को पाकर रामचन्द्र जी की स्त्री विरह ताप मिटाने की सुधि बिसरा दी तो दण्डनीय ठहरा कारण कह आये हैं कि 'जे न मित्र दुःख होहिं दुखारी। तिन्हैं बिलोकत पातक भारी,॥ इत्यादि दूसरे जब (कल) मारने की प्रतिज्ञा की और सुग्रीव उसके पूर्व उसी दिन आ मिला और क्षमा मांग सहायता करने को उद्यत हुआ तो फिर उसे क्यों मारते जैसा जयन्त के पीछे सींक का बाण तक ही छोड़ दिया था परन्तु जब वह शरण आ गया था तो उसे छोड़ दिया॥

अन्वय—मैं जेहि सायक वाली (को) मारा (हे लक्ष्मण) कह, काली तेहि शर मूढ़ (सुग्रीव को) हतौं।

अर्थ—जिस बाण से मैंने वालि को मारा था हे लक्ष्मण ! कहो तो उसी बाण से मूर्ख सुग्रीव को कल मारूं॥

अन्वय दूसरी प्रकार—मैं जेहि सायक वाली (को) मारा तेहि शर (सुग्रीव को) हतौं (तो लोग) काली (मोहि) मूढ़ कह।

अर्थ—मैंने जिस बाण से वालि को मारा था यदि उसी बाण से सुग्रीव को मारूं तो कल लोग मुझे बे समझ कहेंगे (क्योंकि जिसे मित्र कहा उसे मार डालना कैसा)।

चौ०—जासु कृपा छूटे मद मोहा। ताकहँ उमा कि सपनेहु कोहा॥

अर्थ—(१) शिव जी बोले कि हे पार्वती ! जिन (रामचन्द्र जी) की कृपा से अहंकार और ममता का नाश हो जाता है क्या उन्हें स्वप्न में भी क्रोध हो सक्ता है (नहीं यह तो वे नरलीला नाट्य कर रहे हैं)॥

(२) शिव जी कहते हैं हे पार्वती ! जिन (रामचन्द्र जी) की कृपा से सुग्रीव के अहंकार और ममता आदि छूट गये थे उस सुग्रीव के ऊपर रामचन्द्र जी क्या स्वप्न में भी क्रोधित हो सक्ते थे जैसा आरण्य कांड में कहा है 'मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी। बालक सुत सम दास अमानी'॥ और भी भक्तों पर परमेश्वर का प्रेम तुलसी दास जी नीचे की चौपाई में दरशाते हैं—

चौ०—जानहिं यह चरित्र मुनि ज्ञानी। जिन्ह रघुवीर चरण रतिमानी।
लक्ष्मण क्रोधवन्त प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना॥

अर्थ—ये चरित्र तो वे ही ज्ञानवान् मुनि जान सक्ते हैं जिन का रामचन्द्र जी के चरणों में अटल प्रेम है। (देखो) लक्ष्मण ने तो समझा था कि रामचन्द्र जी क्रोधित हो उठे हैं और इसहेतु उन्होंने हाथ में सज्जित धनुष और बाण भी धारण कर लिया था जिसे देख—

दो०—तब +अनुजहिं समझायऊ, रघुपति करुणा सीव।

+ तब अनुजहिं समुझायऊ—इस से स्पष्ट होता है कि राम चरित्र अति गूढ़ हैं इसी कारण गोसाईं जी पूर्व ही कह चुके हैं कि 'जानहिं यह चरित्र मुनि ज्ञानी' देखिये तो सही स्वतः लक्ष्मण जी यह रहस्य न समझ सके और अपने मन से प्रभु को क्रोधित समझ बैठे जिस अभ्यन्तर को समझ रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण को समझा कर कहा कि विशेष क्रोध का

‡ भय दिखाइ लै आवहु, तात सखा सुग्रीव ॥ १६ ॥

अर्थ—दयासागर श्री रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण से (जो रामचन्द्र जी को क्रोधित समझ चुके थे) समझा कर कहा कि हे भाई ! सुग्रीव तो अपना मित्र है उसे धमकाकर लिवा लाओ (उस पर क्रोध आदि विशेष न करना) ॥

चौ०—इहाँ पवनसुत हृदय विचारा। रामकाज सुग्रीव बिसारा ॥
निकट जाय चरनन्ह शिर नावा। +चारिहु विधि तेहि कहि समुझावा ॥

अर्थ—किष्किन्धा में वायुपूत हनुमान् जी ने मन में विचार किया कि सुग्रीव जी तो रामचन्द्र जी के कार्य को भूल ही गये। (इसहेतु स्वामी के) समीप गये, चरणों में शीस नवाया और उनसे चारों प्रकार की राज नीति (अर्थात् साम, दान, भेद और दंड) के विषय में समझाकर कहा ॥

चौ०—सुनि सुग्रीव परम भय माना। विषय मोर हरि लीन्हेउ ज्ञाना ॥
अब मारुतसुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ बानरयूहा ॥

अवसर नहीं और इस में संदेह भी नहीं कि रामरहस्य के विषय में लक्ष्मण जी को अनेक स्थानों में भेद नहीं खुला, जैसा कहा है आरण्य कांड में—'लक्ष्मण हू यह भेद न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना'॥

‡ भय दिखाय लै आवहु—इस में यह ध्वनि निकलती है कि सुग्रीव को कुछ दंड मत देना क्योंकि उसे आप ही ने तो राज्य दिया है जैसा कहा है—

दोहा—जल लकड़ी बोरै नहीं, कहो कहां की प्रीति।
अपनो सींचो जानि के, यही बड़न की रीति ॥

+ चारिहु विधि..........राज नीति के चार मुख्य अंग नीचे के उदाहरण से स्पष्ट होंगे जहां पिता अपने पुत्र को पढ़ाने के विषय में यों नीति गर्भित वचन कहता है:—

श्लोक—अधीष्व पुत्रका धीष्व, दास्यामि तव मोदकान्।
अथान्यस्मै प्रदास्यामि, कर्णमुत्पाट यामिते ॥

अर्थात् (पिता कहता है) हे लड़के ! पढ़ो (१) (यह साम है), (२) मैं तुम्हें लड्डू दूंगा (यह दान है), (३) नहीं तो दूसरे लड़के को दे दूंगा (यह भेद है), और (४) इतने पर भी न मानोगे तो तुम्हारे कान उखाड़ूंगा (यह दंड है) इसी के अनुसार हनुमान् जी कहते हैं कि रामचन्द्र जी ने आप के साथ पहिली नीति "साम" का वर्ताव तो आप को अपना मित्र बना कर किया और दूसरी नीति "दान" का वर्ताव आप का राज्य कोष आदि वालि से छीन कर दे पूरा किया अब जो आप उन के कार्य में सहायता न करेंगे तो आश्चर्य नहीं कि रघुनाथ जी तीसरी नीति "भेद" का उपयोग अंगद को प्रबल कर चौथी नीति "दंड" का विचार बाण द्वारा कदाचित् कर बैठें इसहेतु सचेत होना उचित है।

शब्दार्थ—यूहा (शुद्ध शब्द यूथा) = समूह ॥

अर्थ—हनुमान् जी की बात चीत से सुग्रीव बहुत ही भय भीत हुए और कहने लगे (क्या कहें) भोग विलास के मारे तो मेरी बुद्धि ठिकाने न रही। हे वायु तनय! अब ऐसा करो कि बानर समूहों को दूत कार्य में जहां तहां भेजो तो सही ॥

चौ०—कहेहु पाख महँ आव न जोई। मोरे कर ताकर बध होई॥
+तब हनुमन्त बुलाये दूता। सब कर करि सन्मान बहूता॥

अर्थ—उन से यह कहना कि जो एक पखवाड़े में न लौट आवेगा उस को मैं अपने हाथ से मार डालूंगा। तब हनुमान् जी ने दूतों को बुलवाया और (पहिले) सब का बहुत कुछ आदर किया ॥

चौ०—भय अरु प्रीति नीति दिखराई। चले सकल चरनन्ह शिर नाई॥
तेहि अवसर लछिमन पुर आये। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाये॥

अर्थ—फिर उन्हें भय सहित नीति (अर्थात् आज्ञा न मानने से दंड) और प्रीति युक्त नीति सिखाई (अर्थात् आज्ञा पालन में प्रभु की प्रसन्नता और पारितोषिक की प्राप्ति होगी) सब बानर हनुमान् जी को प्रणाम कर चल खड़े हुए। उसी समय लक्ष्मण जी भी वहां आ पहुंचे, उन्हें क्रोधित समझ बानर यहां वहां दौड़ गये ॥

दो०—धनुष चढ़ाये कहा तब, जारि करौं पुर छार।
ब्याकुल † नगरहिं देखि तब, आयउ वालिकुमार ॥ २० ॥

अर्थ—धनुष चढ़ाकर कहने लगे (भागने से न बचोगे) मैं नगर को जलाकर भस्म करे डालता हूं। नगर निवासियों को घबराया हुआ देख अंगद लक्ष्मण जी के पास आये ॥

चौ०—चरण नाइ शिर विनती कीन्ही। लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही॥
क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीश अतिशय अकुलाना॥

शब्दार्थ—अभय बाँह = रक्षा करने का वचन ॥

अर्थ—चरणों पर मस्तक नवाकर विनती की तब लक्ष्मण जी ने कहा कि तुम आनन्द करो। इतनेमें लक्ष्मण को क्रोधित सुन कर बानरराज सुग्रीव बहुतही घबराये ॥

+ तब हनुमन्त बुलाये दूता। सब कर करि सन्मान बहूता॥ इस के आगे का ८४ लकीरों का क्षेपक पुरौनी में मिलेगा।

† ब्याकुल नगर.........यहां पर लक्षणा से यह अर्थ सूचित हुआ कि नगर निवासी

चौ०—सुनु हनुमंत † संग लै तारा। करि विनती समुझाव कुमारा॥
तारा सहित जाय हनुमाना। चरण बंदि प्रभु सुयश बखाना॥

अर्थ—(और) कहने लगे हे हनुमान्! तुम तारा को संग में ले जाओ और विनय कर राजकुमार लक्ष्मण जी के क्रोध को शांत करो। हनुमान् जी तारा को लिवा ले गये और लक्ष्मण के चरणों की वन्दना कर रामचन्द्र जी के गुणानुवाद कहने लगे॥

चौ०—करि विनती मंदिर लै आये। चरण पखारि पलँग बैठाये॥
तब कपीश चरनन्ह शिर नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा॥

अर्थ—विनय पूर्वक उन्हें महलों में लिवा ले गये और उन के चरण धोकर उन्हें पलंग पर बिठलाया। इस के उपरान्त सुग्रीव ने उन को साष्टांग प्रणाम किया तब तो लक्ष्मण ने हाथों से उठाय उस को अपने गले से लगा लिया॥

चौ०—* नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करै क्षण माहीं॥
सुनत विनीत वचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहुविधि समुझावा॥

व्याकुल हुए क्योंकि नगर तो व्याकुल होही नहीं सक्ता जैसे प्रातःकाल से रास्ता चलने लगी से यह अभिप्राय है कि सवेरे से रास्ते पर लोग चलने लगे॥

† सुनु हनुमन्त संग लै तारा—हनुमान् को तारा के संग भेजने का यह अभिप्राय समझ पड़ता है कि जिस प्रकार हनुमान् ने पहिले जाकर रामचन्द्र जी से मैत्री कराई थी वैसी ही चतुराई से क्रोध शान्त करा देवेंगे कारण लक्ष्मण के आने के पहिले ही हनुमान् ने सुग्रीव को सावधान कर बंदरों के सेनापतियों को बुलवा भेजाथा। तारा को भेजने का कदाचित् यह अभिप्राय है कि इस पति हीना को देख दया करैंगे, दूसरे इस के लड़के अंगद को युवराज बना चुके हैं सो उस पिता हीन बालक की रक्षा हेतु सुग्रीव का अपराध क्षमा करैंगे और तीसरे वाल्मीकीय रामायण के देखने से स्पष्ट होता है कि यह स्त्री बड़ी चतुरा थी. लक्ष्मण प्रति उस के कुछ वचन ये हैं॥ (राम रत्नाकर रामायण से)

छन्द—कपि जात चंचल प्रकृति हू पुनि राजमद को पान के।
सुधि ना भई अचरज कहा पर धर्म ये हित हान के॥
निज मित्र को अपराध जानि बिसारिये तजि क्रोध हू।
चल देखिये सुग्रीव को समुझाय कीजे शोध हू॥

* नाथ विषय सम मद कछु नाहीं—

श्रवण लै जाय कर नाद की ले डारैं फांस नैन वाले जाय कर रूपवश करयो है।
नासिका लै जाय कर बहुत सुँघावै गंध रसन लै जाय कर स्वाद मन हरयो है॥
चरम लै जाय कर नारी सो सपर्श करै 'सुन्दर' कोऊक साध ठगन सों डरयो है।
काम ठग क्रोध ठग लोभ ठग मोह ठग ठगन की नगरी में जीव आय परयो है॥

पवनतनय सब कथा सुनाई। जेहि विधि गये दूतसमुदाई॥

अर्थ—(सुग्रीव बोले) हे स्वामी ! भोग विलास के समान दूसरा मद नहीं है जो बड़े २ मुनियों के (अर्थात् भूत, भविष्यत, वर्त्तमान तीनों कालों के जानने वाले मनन शील प्राणियों के) चित्त को डांवाडोल कर डालता है। सुग्रीव के नम्र वचन सुनते ही लक्ष्मण जी प्रसन्न होगये और फिर नाना प्रकार से उस को सिखापन देने लगे। (संधि पाते ही) हनुमान् जी ने वह सब वार्त्ता कह सुनाई कि जिस प्रकार से बानर दूतों के समूह पहिले ही से अनेक बानर यूथपों को बुलाने के लिये भेजे गये थे।

दोहा—हरषि चले सुग्रीव तब, अंगदादि कपि साथ।
राम अनुज आगे किये, आये जहँ रघुनाथ॥ २१॥

अर्थ—(निदान) प्रसन्न हो सुग्रीव जी अंगद आदि बानरों को साथ लिये श्री रामचन्द्र जी के छोटे भाई लक्ष्मण को आगे किये हुए वहां आ पहुँचे जहां श्री रामचन्द्र जी विराजमान थे॥

चौ०—†नाइ चरण शिर कह कर जोरी। नाथ मोरि कछु नाहिं न खोरी॥
अतिशय प्रबल देव तव माया। छूटै तबहि करहु जब दाया॥

अर्थ—रामचन्द्र जी के चरणों को शीस नवा हाथ जोड़ कर कहने लगे कि हे स्वामी ! इस में मेरा कुछ दोष नहीं है। हे देव ! आप की माया से, जो बड़ी बलवती है, तभी छुटकारा होता है जब आप दया करते हैं॥

चौ०—*विषय विवश सुर नर मुनि स्वामी। मैं पामर पशु कपि अति कामी॥

---

† नाइ चरण शिर कह कर जोरी। नाथ मोरि कछु नाहिं न खोरी॥ रामयश दर्पण नाटक से—

सवैया—पशु जाति में मंद विषै वश हौं यह चूक कछू न हिये धरिये।
अति दीन पुकारत आरत ह्वै हिय भूरि भरो भय को हरिये॥
तुम दीन हितू अति दीन हौं मैं अब तें भ्रम जालन को हरिये।
अपराध क्षमौ जन जानि हरी करुणाकर हौ करुणा करिये॥

* विषय विवश सुर नर मुनि स्वामी—इसी आशय को भर्तृहरि जी कैसी उत्तम रीति से दरसाते हैं, यथा—

श्लोक—विश्वामित्र पराशर प्रभृतयो बाताम्बु पर्णाशना,
स्तेऽपि स्त्री .पंकजं सु ललितं दृष्ट्वैव मोहंगताः।
शाल्यन्नं सघृत पयोदधि युतं भुंजन्ति ये मानवा:,
स्तेषामिंद्रिय निग्रहो यदि भवेद्विंध्यस्तरेत्सागरं॥ (अर्थात्)

×नारि नयन शर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निशि जो जागा॥
लोभ पाश जेहि गर न बँधाया। सो नर तुम समान रघुराया॥
†यह गुण साधन ते नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई॥

अर्थ—हे प्रभु! मनुष्य, मुनि और देवता भी भोग विलास में फँस जाते हैं फिर मैं तो नीच पशु बन्दर मानो काम का वेग ही हूं। (सत्य तो यों है कि) (१) जिसे स्त्री के नेत्र कटाक्षों ने बाधा नहीं की, (२) जो अधिक क्रोधरूपी गहरी अन्धेरी रात में चैतन्य रहा (अर्थात् जिसे क्रोध ने नहीं सताया) और (३) जिसने लोभरूपी फँसड़ी को अपने गले में नहीं डाली (अर्थात् जो लोभ के वश नहीं हुआ) ऐसे मनुष्य हे रघुनाथ जी! आप ही के बराबरी के हैं॥

अर्थात् विश्वामित्र पराशर आदि बड़े बड़े ऋषि जो वायु, जल और पत्ते खा पी के रह जाते थे वे भी स्त्री मुखकमल को देख कर मोह को प्राप्त हुए तो लोग जो अन्न, घी, दूध, दही आदि अच्छे २ व्यंजन भोजन करते हैं उन की इन्द्रियां यदि वश में हो जायँ तो समुद्र पर विंध्याचल के तैरने में क्या आश्चर्य है अर्थात् इन्द्रियों को कठिनाई से वश में कर सक्ते हैं॥

× नारि नयन शर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निशि जो जागा॥

लोभ पाश जेहि गर न बँधाया—(देखो कबीर की साखी)

दो०—चलन चलन सब कोइ कहे, पहुँचे बिरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी, दुर्लभ घाटी दोय॥

और भी—

छप्पय—को न क्रोध निरदहेउ काम वश केहि नहिं कीन्हो।
को न लोभ दृढ़ फंद बांध त्रासन कर दीन्हो॥
कवन हृदय नहिं लाग कठिन अति नारि नयन शर।
लोचन युत नहिं अंध भयो श्री पाय कवन नर॥
सुर नाग लोक महि मंडलहु को जु मोह कीन्हो जय न।
कहँ तुलसिदास सो उबर जेहि राख राम राजिब नयन॥

† यह गुण साधन ते नहिं होई—यही आशय तुलसीदास जी ने अपनी सतसई के इस दोहे में अच्छी रीति से दरसाया है—

दो०—तुलसी पति रति अंक सम, सकल साधना शून।
अंक रहित कछु हाथ नहिं, सहित अंक दश गून॥

सारांश—काम, क्रोध और लोभ हीन जन ईश्वर तुल्य हैं ॥

अर्थ—ऊपर कही हुई बातें केवल साधनाओं से नहीं होती इन्हें तो कोई कोई प्राणी आप की कृपा से प्राप्त कर सक्ते हैं ॥

चौ०–तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम प्रिय मोहि भरत जिमि भाई ॥
अब सोइ यतन करहु मनलाई। जेहि विधि सीता की सुधि पाई ॥

अर्थ—(ऐसी ज्ञान की बातें सुन) रामचन्द्र जी मुसकराये और कहने लगे हे भाई ! तुम तो मुझे भरत के समान प्यारे हो। अब चित्त लगाकर ऐसा उपाय करो कि जिससे सीता का पता लग जावे ॥

दोहा–इहि विधि होत बतकही, आये बानर यूथ।
नाना बरन सकल दिशी, देखिय कीशबरूथ ॥ २२ ॥

अर्थ—इस प्रकार बात चीत होही रही थी कि वानरोंके झुण्ड के झुण्ड आ पहुंचे। सम्पूर्ण दिशाओं में जहां देखो तहां अनेक रङ्ग के बन्दर ही बंदर दिखाई देते थे ॥

चौ०–बानरकटक उमा मैं देखा। सो मूरख जो किय चह लेखा ॥
आइ रामपद नावहिं माथा। निरखि बदन सब होहिं सनाथा ॥

अर्थ—(शिवजी बोले कि) हे पार्वती ! मैं ने बन्दरों की वह सेना देखी है परन्तु जो उन का लेखा लगाना चाहे उसे मूर्ख समझना चाहिये (भाव यह है कि सेना में अगणित बन्दर थे)। सब के सब आतेही रामचन्द्र जी के चरणों पर शीस नवाते थे और उन की मुखछवि देख कर मग्न हो जाते थे ॥

चौ०–अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुशल पूछा जेहि नाहीं ॥
यह कछु नहिं प्रभु के अधिकाई। +विश्वरूप व्यापक रघुराई ॥

+ विश्व रूप व्यापक रघुराई—श्वेताश्वतरोपनिषत् में लिखा है

यो देवो अग्नौ यो अप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥

अर्थात् (मुक्ति पाय आनंदित हो जीवात्मा हर्ष के मारे स्तुति करने लगता है और कहता है कि) हे परमात्मा ! जो आप अग्नि में, जो आप जल में, जो आप औषधि में, जो आप वनस्पतियों में, जो आप सब जगत में व्यापक होके स्थिति हैं उन आप दिव्य स्वरूप को वारंवार नमस्कार है. भाव यह कि अग्नि, जल, औषधि, वनस्पति और कहां तक गिनावें सारे जगत में व्यापक हे भगवान् ! आप को अनेकानेक नमस्कार हैं धन्य हो ! प्रभो ! धन्य हो !

अर्थ—उस कटक में एक भी बन्दर ऐसा न था कि जिस से रामचन्द्र जी ने कुशल न पूछी हो (अर्थात् उनने प्रत्येक से कुशल प्रश्न किये) इस में कुछ रघुनाथ जी की विशेषता नहीं कारण प्रभु तो संसार भर में व्याप्त हैं ॥

चौ०—ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहिं समुझाई ॥
रामकाज अरु मोर निहोरा। बानरयूथ जाहु चहुँ ओरा ॥

अर्थ—(सब बन्दर) जहां तहां आज्ञापाकर खड़े हो गये तब सुग्रीव सब बन्दरों से समझा कर कहने लगे। हे वानरों के समूह ! तुम चारों ओर जाओ जिस से रामचन्द्र जी का तो काम होवे और मुझ पर तुम्हारा उपकार हो ॥

चौ०—*जनकसुता कहँ खोजहु जाई। मासदिवस महँ आयहु भाई ॥
अवधि मेटि जो बिन सुधि पाये। अवशि मरिहिं सो ममकर आये ॥

अर्थ—सीता जी की सुध लेकर एक महीने की अवधि में लौट आना। एक मास के अनन्तर जो बिना पता लगाये लौटेगा वह अवश्य मेरे हाथ से मारा जायगा ॥

दोहा—बचन सुनत बानर सबहि, जहँ तहँ चले तुरन्त।
तब सुग्रीव बुलायऊ, अंगदादि हनुमंत ॥ २३ ॥

अर्थ—आज्ञा सुनते ही सब बन्दर जल्दी से चारों ओर चल खड़े हुए। फिर सुग्रीव ने अङ्गद और हनुमान् आदि को बुलाया ॥

चौ०—सुनहु नील अङ्गद हनुमाना। +जामवंत मति धीर सुजाना ॥
सकल सुभट मिलि दच्छिण जाहू। सीता सुधि पूछहु सब काहू ॥

अर्थ—(और कहा) हे नील, अङ्गद और हनुमान् तथा ज्ञानी धीरजवान् जामवन्त ! तुम सब योद्धा मिलकर दच्छिण दिशा को जाओ और सब लोगों से सीता का पता पूछो (दच्छिण दिशा में 'सीता सुधि पूछहु सब काहू' ये वचन इस लिये कहे कि सुग्रीव ने सीता जी को दच्छिण की ओर जाते हुए देखा था) ॥

---

* जनक सुता कहँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आयहु भाई ॥ इस के आगे का ३१ लकीरों का क्षेपक पुरौनी में देखो ॥

+ जामवंत—ब्रह्म देव से उत्पन्न जामवंत बड़े बलवान् और प्रतापी थे. इन्हों ने रामचन्द्र जी को लंका युद्ध के समय बहुत कुछ सहायता दी थी ये रामचन्द्र जी को सुग्रीव और विभीषण के साथ मंत्री का काम देते थे. इन का वर्णन द्वापर के अन्त में कृष्णावतार के समय भी किया गया है।

चौ०—मन क्रम वचन सो यतन विचारेहु। रामचन्द्र कर काज सँवारेहु॥
× भानु पीठ सेइय उर आगी। स्वामिहि सर्बभाव छल त्यागी॥

अर्थ—मनसा वाचा कर्मणा से वही उपाय सोचो कि जिस में रामचन्द्र जी का काम सिद्ध कर सको। (नीति है कि) धूप को पीठ पर लेवै, अग्नि को हृदय के पास रखकर तापै और अपने प्रभु की तो सब प्रकार से कपट छोड़ सेवा करै।

चौ०—तजि माया सेइय परलोका। मिटहि सकल भवसंभव शोका॥
देह धरे कर यह फल भाई। भजिय राम सब काम बिहाई॥

अर्थ—माया का त्याग करने से परलोक की चिन्ता हो सक्ती है और तबही सम्पूर्ण संसार संबंधी सोच दूर हो सक्ते हैं। हे वीरो! जन्म लेने का यही फल है कि सब को तजौ और राम को भजौ॥

चौ०—सोइ गुणज्ञ सोई बड़ भागी। जो रघुवीर चरण अनुरागी॥
आयसु माँगि चरण शिर नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई॥

अर्थ—वही गुणी है और वही बड़ा भाग्यवान् है जिसका प्रेम रामचन्द्र जी के चरणों में लगा हो। (इन वचनों को सुन सब वानर योद्धा) बिदा मांग और सुग्रीव के चरणों में शीस नवा, प्रसन्नतापूर्वक रघुनाथ जी का स्मरण करते हुए चले॥

चौ०—पाछे पवनतनय शिर नावा। जानि काज प्रभु निकट बुलावा॥
परसा शीस सरोरुहपानी। ‡ करमुद्रिका दीन्हि जन जानी।

अर्थ—(सब वीरों के वहां से चले जाने के) पीछे हनुमान् जी ने (रामचन्द्र जी को) शीस नवाया सो प्रभु ने अपने काम के विचार से उन्हें अपने पास बुला लिया। और उन के शिर पर अपना कमलस्वरूपी हाथ फेरा तथा अपना भक्त जान अपने

× भानु, अग्नि, स्वामी और परलोक के विषय में तुलसीदास जी का कथन नीचे के श्लोक ही का मानो पूरा आशय है यथा:—

पृष्ठतः सेवयेदर्कं जठरेण हुताशनम्। (हितोपदेश)
स्वामिनं सर्व भावेन परलोक ममायया॥

‡ कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी—श्री रामचन्द्र जी ने सब रीछ और बानरों के चले जाने के पश्चात् हनुमान् जी के प्रणाम करने पर उन्हें सीता शोधन के काम में योग्य समझ मुद्रिका दे सीता जी को सँदेशा तक कहला भेजा था, जैसा राम चन्द्रिका में लिखा है॥

दो०—बुधि विक्रम व्यवसाय युत, साधु समझि रघुनाथ।
बल अनंत हनुमन्त के, मुँदरी दीन्ही हाथ॥

हाथ की अंगूठी उन्हें दी ॥

चौ०—बहु प्रकार सीतहि समुझायेहु। *कहिबल विरह वेगि तुम आयेहु॥
हनुमत जनम सुफल करि माना। चलेउ हृदय धरि कृपानिधाना॥
‡ यद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता॥

अर्थ—(और कहा) तुम नाना प्रकार से सीता को बोध कराना और वियोग का भारी दुःख उनसे कह जल्दी से लौट आना। हनुमान् जी ने अपना जीवन सफल समझा और वे दयासागर रामचन्द्र जी का ध्यान हृदय में धर कर चले। रामचन्द्र जी सब बातें तो जानते ही थे तथापि वे राजनीति का बर्त्तावा करते थे॥

दो०—विपिन सकल खोजत चले, सरिता सर गिरि खोह।
रामकाज लवलीन मन, बिसरा तनु कर छोह॥ २४॥

अर्थ—सब के सब जङ्गल, नदी, तालाब और कन्दराओं में ढूंढ़ते हुए चले जाते थे। उन्हें अपने शरीर का कष्ट भूल गया, कारण उन का मन तो रामचन्द्र जी के कार्य में लीन हो रहा था॥

चौ०—+कतहुँ होइ निशिचर सन भेटा। प्राण लेहिं इक एक चपेटा॥
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलै ताहि सब घेरहिं॥

---

* 'कहि बल विरह वेगि तुम आयेहु' का पाठान्तर 'कहि बल बीर बेगि तुम आयेउ' अर्थ स्पष्ट ही है।

रामरसायन रामायण से—

कवित्त—विरह भभूक तनु लूकैं सी लगी हैं अति मनसिज हूकैं अंग अंगन छई रहैं।
नीर औ समीर छांह चन्द्रनिशि चन्द्रकादि शीतल सकल वस्तु तपनि तई रहैं॥
'रसिक विहारी' कित जाऊं हाय कासों कहौं दशो दिशि देखौं तितै अनल मई रहैं।
पावस शरद हिम शिशिर बसंत मोहिं प्यारी बिन सबै ऋतु ग्रीषम भई रहैं॥

‡ यद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता—

स्मरण रहे कि सीता हरण रामचन्द्र जी की इच्छानुसार ही था और वे जटायु से सुन भी चुके थे कि सीता को रावण हर कर दक्षिण की ओर चला गया है तौ भी इन्हों ने हनुमान् से प्रथम भेट में यही कहा था कि 'यहां हरी निशिचर वैदेही। खोजत विप्र फिरत हम तेही' और अब हनुमान् को बुला कर मुद्रिका दी तथा उन्हें दक्षिण ओर जाते हुए कुछ सँदेशा कहला भेजा उस का कारण गोसाईं जी ने यहां इसी चौपाई में स्पष्ट कर दिया है।

+ कतहुँ होइ निशिचर सन भेटा। प्राण लेहिं इक एक चपेटा—इस के आगे का १२ लकीरों का क्षेपक पुरौनी में देखो॥

शब्दार्थ—चपेटा = दबा कर। हेरहिं = ढूंढ़ते हैं॥

अर्थ—जहाँ कहीं राक्षस मिल जाता था वहीं पर एक को एक दबाकर मार डालता था। अनेक प्रकार से पहाड़ और बन में खोजते फिरते थे, यदि कोई मुनि मिल जाता था तो उसे सब जा घेरते थे (इस अभिप्राय से कि मुनि जी कदाचित् सीता का पता जानते हों)॥

चौ०—लागि तृषा अतिशय अकुलाने। मिलै न जल †बन गहन भुलाने॥
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिन जल पाना॥

अर्थ—ज्योंहीं प्यास लगी त्योंहीं सब के सब बहुत ही घबरा उठे, पानी तो मिलता ही न था कि साथ ही साथ भूल कर घने जङ्गल में जा पहुंचे। हनुमान् जी ने मन से विचारा कि पानी बिन पिये सब बानर मरे जाते हैं॥

चौ०—चढ़ि गिरि शिखर चहूँ दिशि देखा। भूमि विवर इक कौतुक पेखा॥
चक्रवाक बक हंस उड़ाहीं। बहुतक खग प्रविशहिं तेहि माहीं॥

अर्थ—एक पहाड़ की चोटी पर चढ़कर चारों ओर दृष्टि पसारी तो क्या चमत्कार देखते हैं कि पृथ्वी में एक बिल था जिस पर चकवा, बगुला और हंस मड़रा रहे थे और बहुतेरे पक्षी उसमें पैठते दिखाई देते थे॥

चौ०—गिरि ते उतरि पवनसुत आवा। सब कहँ लै सो विवर दिखावा॥
आगे करि हनुमंतहिं लीन्हा। पैठे विवर विलम्ब न कीन्हा॥

अर्थ—वायुपूत हनुमान् जी पर्वत से उतर आये और उन्हों ने सब बानरों को ले जाकर वह बिल दिखा दिया। वे सब तुरन्त ही हनुमान् जी को आगे कर उस विवर में घुसे॥

दो०—दीख जाय उपवन सुभग, सर बिकसित बहुकंज।
मंदिर एक रुचिर तहां, ‡ बैठि नारि तपपुंज॥ २५॥

† बन गहन का अर्थ घना जङ्गल ऐसा होता है और इस के पाठान्तर "घन गहन" का भी वही अर्थ है, इस का कारण यह है कि "गहन" शब्द का अर्थ 'घना' होता है जैसा कहा है अमर कोष में—'कलिलं गहनं समे' अर्थात् कलिल और गहन दोनों से एक ही अर्थ (दुर्गम) का बोध होता है। 'घन गहन' का अर्थ भी घना जङ्गल है क्योंकि यहां गहन शब्द से जङ्गल का अर्थ समझा गया जैसे अमर कोष में लिखा है:—'अटव्य रण्यं विपिनं गहनं काननं वनं'। यहीं पर मंडु नाम के ऋषि के पुत्र को किसी जङ्गली जानवर ने खा लिया था इस से क्रोधित हो ऋषि जी ने श्राप देकर इस बन को निर्जन व निर्जल कर दिया था॥

‡ बैठि नारि तप पुंज—इस तपस्विनी स्त्री का नाम 'स्वयंप्रभा' था और यह मेरु—

अर्थ—वहां जाकर उन्हों ने एक सुन्दर बाग़ देखा जिस में कमल के बहुत से फूलों से सुशोभित एक तालाब था। वहीं पर एक मनोहर मन्दिर देखा जिस में बड़ी तपस्विनी एक स्त्री बैठी थी॥

चौ०—दूरहि ते तेहि सब शिर नावा। पूछेसि निज वृत्तांत सुनावा॥
तब तेइ कहा करहु जलपाना। खाहु सरस सुन्दर फल नाना॥

अर्थ—सब ने दूर ही से उस को प्रणाम किया और उस के पूछने पर अपना हाल कह सुनाया। तब वह बोली कि पानी पियो और भांति भांति के सुन्दर रसीले फल खाओ॥

चौ०—मज्जन कीन्ह मधुरफल खाये। तासु निकट पुनि सब चलि आये॥
तेइ सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई॥

अर्थ—उन्हों ने स्नान करके मीठे फल खाये और फिर सब उस के पास जा पहुंचे। तब उस ने अपनी सब कथा कह सुनाई और बोली अब तो मैं वहीं जाती हूं जहां रामचन्द्र जी हैं॥

चौ०—मूँदहु नयन विवर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू॥
नयन मूँदि पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिंधु के तीरा॥

अर्थ—तुम सब अपने नेत्र बंद करो तो इस बिल से बाहर हो जाओगे कुछ चिन्ता न करो सीता जी मिल जायँगी। सम्पूर्ण योद्धा नेत्र बंद कर ज्योंहीं खोलते हैं तो क्या देखते हैं कि सब के सब समुद्र के किनारे खड़े हैं॥

चौ०—सो पुनि गई जहां रघुनाथा। जाइ कमलपद नायसि माथा॥
नाना भाँति विनय तेइ कीन्ही। अनपायनी भक्ति प्रभु दीन्ही॥

अर्थ—वह स्त्री वहां जा पहुंची जहां रामचन्द्र जी थे, जाते ही उस ने उन के कमलस्वरूपी

सावर्णि की कन्या थी. इस की सखी का नाम हेमा था. यह अद्भुत श्रेष्ठ रचना का स्थान इसे इस की सखी हेमा ने तपस्या के लिये दिया था और आप स्वर्ग को सिधारी थी. इस स्थान का रचने वाला मय नाम का दानव था जिस ने अपनी शिल्पकारी से इसे बहुत ही रमणीय और दुर्गम रचा था. इस ने हेमा नाम की उर्वशी को मोहित कर इस स्थान में भोग विलास के हेतु रख लिया था. जब यह हाल इन्द्र को मालूम हुआ तब उन्हों ने 'मय' राक्षस को वहां से निकाल दिया और हेमा स्वर्ग को चलीगई. वह जाते समय इस स्थान को तपस्या के योग्य समझ अपनी सखी स्वयंप्रभा को दे गई. यह स्वयंप्रभा सीता का हाल हनुमान् आदि बानरों को बता आप रामचन्द्र जी के पास गई और उन के दर्शन कर मुक्ति को प्राप्त हुई।

चरणों में सीस नवाया और अनेक प्रकार से विनती की रामचन्द्र जी ने उसे अनन्य भक्ति दी ॥

दो०—× बदरीबन कहँ सो गई, प्रभुआज्ञा धरि शीश।
समचरण युग धारि उर, जे वंदत अज ईश॥ २६ ॥

अर्थ—फिर वह प्रभु की आज्ञा को अंगीकार कर बदरी बन को चली गई, उस ने हृदय में रामचन्द्र जी के चरणों को धारण कर लिया जिन की वंदना ब्रह्मदेव और महादेव भी करते हैं ॥

चौ०—इहां विचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं ॥
सब मिल कहहिं परस्पर बाता। बिन सुधि लिये करब का भ्राता ॥

अर्थ—यहां पर बन्दर विचारने लगे कि एक महीना तो होता आया परन्तु काम कुछ भी न हुआ। सब के सब आपस में यों कह रहे थे कि अरे भाई! बिना पता लगाये कैसे काम चले ॥

चौ०—कह अंगद लोचन भरि वारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी ॥
इहां न सुधि सीता कर पाई। वहां गये मारिहि कपिराई ॥

अर्थ—इतने में अंगद आंखों में आंसू भर बोल उठा कि हम तो दोनों प्रकार से मरे। कारण एक तो सीता जी की खबर नहीं लगी और दूसरे लौट कर जाने में बानरराज मेरा बध करेंगे ॥

चौ०—पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही ॥
पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं। मरण भयो कछु संशय नाहीं ॥

अर्थ—पिता के मारे जाने पर वह मुझे अवश्य मार डालता परन्तु मुझे रामचन्द्र जी ने ही बचा लिया सुग्रीव की कुछ थराई नहीं। अंगद बारम्बार सब से यही कहता था कि अब मेरा मारा जाना निश्चित हुआ इस में सन्देह न रहा ॥

चौ०—अंगद वचन सुनत कपिवीरा। बोलि न सकहिं नयन बह नीरा ॥
क्षण इक शोक मगन ह्वै गये। पुनि अस वचन कहत सब भये ॥

अर्थ—अंगद के वचन सुन बानर योद्धाओं के नेत्रों से आंसू टपकने लगे, परन्तु वे कुछ कह न सके। एक पल भर तो दुःख में डूब गये फिर सब के सब यों कहने लगे ॥

× बदरी बन—हिमालय के ऊपर एक विशेष स्थान का नाम है सो यों कि वहां बदरि अर्थात् 'बेर' के वृक्ष असंख्य हैं और इन के फल भी बड़े २ तथा स्वादिष्ट होते हैं. इस स्थान पर नर नारायण नाम के ऋषि तपस्या करते रहे ॥

चौ०—हम सीता कै सोध बिहीना। नहिं जैहहिं युवराज प्रबीना॥
अस कहि लवणसिंधुतट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥

अर्थ—हे चतुर युवराज जी! हम सीता का पता लगाये बिना न लौटेंगे। ऐसा कह खारे समुद्र के किनारे सब बानर कुशा बिछा बिछा कर बैठ गये॥

चौ०—जामवंत अंगददुख देखी। कही कथा उपदेश बिसेखी॥
तात राम कहँ नर जनि मानहु। निर्गुणब्रह्म अजित अज जानहु॥
हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुण ब्रह्म अनुरागी॥

अर्थ—जामवन्त ने अंगद को दुखी देख उस के समझाने के निमित्त विशेष उपदेश से भरी हुई कथायें कहीं। हे प्यारे! तुम रामचन्द्र जी को मनुष्य मत समझो, इन्हें तुम तीनों गुणों से परे परब्रह्म, अजेय और जन्म रहित जानो। हम सब उन के सेवक बड़े भाग्यवान् हैं जो अवतारधारी परमात्मा में निरन्तर प्रेम लगाये हुए हैं॥

दो०—*निज इच्छा प्रभु अवतरै, सुर महि गो द्विज लागि।
सगुणउपासक रहहिं सब, मोच्छ सकल सुख त्यागि॥ २७॥

अर्थ—परमेश्वर अपनी ही इच्छा से देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मण के हेतु अवतार लेते हैं। जो भक्त अवतारों को मानते हैं वे सब प्रकार के मोक्ष अर्थात् (१) सामीप्य, (२) सारूप्य, (३) सालोक्य और (४) सायुज्य के सब सुखों को छोड़ देते हैं॥

चौ०—इहि विधि कहत कथा बहु भाँती। गिरिकंदरा सुनी +संपाती॥
बाहिर हुइ देखे बहु कीशा। मोहि अहार दीन्ह जगदीशा॥

---

* निज इच्छा प्रभु अवतरै, सुर महि गो द्विज लागि—देखो इसी कांड के आरंभ में 'गो विप्र वृन्द प्रियौ' की टिप्पणी पृ० १

+ संपाती—कश्यप ऋषि की विनता नाम स्त्री से दो पुत्र उत्पन्न हुए. एक अरुण, दूसरे गरुड़. अरुण के श्येनी नाम स्त्री से संपाती और जटायु हुए. (जटायु का हाल आरण्यकांड की श्री विनायकी टीका में देखो). संपाती जटायु के साथ उड़ते २ सूर्य के बहुत समीप पहुँच गया. सूर्य की गर्मी न सह कर जटायु तो लौट आया परंतु संपाती के पंख जल गये और वह दक्षिण समुद्र के पास महेन्द्र पर्वत पर आ गिरा, बहुत समय तक मूर्छित रह कर जब यह सावधान हुआ तो घिसटते घिसटते भोजन पान की खोज में चंद्रमा नाम के मुनि से मिला, उस ने दया कर इसे ब्रह्म ज्ञान सिखाया और कालांतर में जब मुनि बैकुंठ को जाने लगे तब इन्हों ने रामचंद्र जी के जन्म से लगाकर सीता की खोज में जो बानर आवेंगे उन्हें तू सीता

अर्थ—इस प्रकार भाँति २ की बातचीत हो रही थी, जिसे पहाड़ की गुफ़ा में संपाती ने सुनी। ज्यों हीं वह गुफ़ा से निकला त्यों हीं उस ने बहुत से बन्दरों को देख कहा कि अरे! भगवान् ने मुझे भोजन भेज दिया॥

चौ०—आज सबन्ह कहँ भक्षण करऊँ। दिन बहु गे अहार बिन मरऊँ॥
कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा। आज दीन्ह विधि एकहि बारा॥

अर्थ—बहुत दिन हुए मैं भूखों मरता हूं आज इन सब को खाऊंगा। देखो! कभी पेट भर भोजन नहीं मिले, आज तो ब्रह्मा ने एक ही बार (बहुत सा भोजन) भेज दिया है॥

चौ०—डरपे गीधवचन सुनि काना। अब भा मरण सत्य हम जाना॥
कपि सब उठे गीध कहँ देखी। जामवंत † मन सोच बिसेखी॥

अर्थ—कानों में गीध के शब्दों की भनक पड़ते ही वे सब डर गये और बोल उठे हमें ठीक जँचता है कि हमारी मृत्यु आगई। सब बानर गीध को देखते ही उठ खड़े हुए और जामवंत के हृदय में बड़ा खेद हुआ॥

चौ०—कह बिचारि अंगद मन माहीं। +धन्य जटायू सम कोउ नाहीं॥
रामकाज कारण तनु त्यागी। हरिपुर गयउ परमबड़भागी॥

अर्थ—मन में विचार कर अंगद कह उठा कि धन्य है जटायु को, जिस के समान कोई दूसरा नहीं है। (देखो) उस ने रामचन्द्र जी का कार्य सिद्धि करने के हेतु अपना शरीर त्यागा और अपने बड़े भाग्य का उदय प्राप्त कर वैकुण्ठ बास पाया॥

का सच्चा पता बताकर सुखी होगा और तेरे पंख भी जम आवैंगे इतना कह गये, यह सब वृत्तांत ठीक ही हुआ जैसा कि किष्किंधा कांड की कथा से प्रकट होता है॥

† जामवन्त मन सोच विसेखी—विशेष सोच का कदाचित् एक यह कारण है कि ये बहुत बुड्ढे थे, दूसरे यही सब में समझदार होने से सब को अपने साथ लाये थे सो एकाएकी बन्दरों के काल गिद्ध को देख बड़ी चिन्ता में पड़े॥

+ धन्य जटायू सम कोउ नाहीं—

सवैया—जानकि को सुनि आरत नाद सुजानि दशानन की छलहाँईं।
त्यों 'पदमाकर' नीच निशाचर आइ अकाश में आड्यो तहाँईं॥
रावण ऐसे महारिपु सों अति युद्ध कियो अपने बलताईं।
सोहत श्री रघुराज के काज पै जीव तजे ज्यों जटायु की नाईं॥

चौ०–जो रघुपति चरनन्ह चित लावइ। तेहि सम आन न धन्य कहावइ॥
सुनि खग‡हर्ष शोक युत बानी। आवा निकट कपिन्ह भय मानी॥

अर्थ—जो प्राणी रामचन्द्र जी के चरणों में चित्त लगाता है उस के समान भाग्यवान् दूसरा नहीं कहा जा सक्ता। जब संपाती ने ये सुख और दुःख भरे वचन सुने तब वह उन के निकट आ गया इस से बानर भयभीत हुए॥

चौ०–तिनहिं अभय करि पूछेसि जाई। कथा सकल तिन ताहि सुनाई॥
सुनि संपाति बंधु कै करनी। रघुपतिमहिमा बहु विधि बरनी॥

अर्थ—(संपाती बोला) डरो मत और फिर जटायु का हाल पूछा, उन्हों ने सब कच्चा हाल कह सुनाया। जब संपाती ने अपने भाई का पुरुषार्थ सुना तब तो वह भी रघुनाथ जी की महिमा को नाना प्रकार से सराहने लगा॥

दो०–मोहि लै चलहु सिंधुतट, देउँ तिलांजलि ताहि।
वचनसहाय करब मैं, पैहहु खोजहु जाहि॥ २८॥

शब्दार्थ—तिलांजलि = अंजुली में जल और तिल जो मृतक के निमित्त दिये जाते हैं॥

अर्थ—तुम मुझे समुद्र के किनारे तक पहुंचा देव कि मैं उसे तिलांजलि दूं। मैं तो केवल बातों ही की सहायता कर सकूंगा तुम खोज लगाओ वे मिल जावेंगी॥

चौ०–अनुजक्रिया करि सागर तीरा। कह निजकथा सुनहु कपिवीरा॥
हम दोउ बंधु प्रथम तरुणाई। गगन गये रवि निकट उड़ाई॥

अर्थ—समुद्र के किनारे अपने भाई को तिलांजली दे (संपाती) अपनी कथा कहने लगा, हे बानर योद्धाओ सुनो! एक बार हम दोनों भाई जवानी के आरंभ में आकाश में उड़ते २ सूर्य के समीप जा पहुंचे॥

चौ० तेज न सहि सक सो फिरि आवा। मैं अभिमानी रवि नियरावा॥
जरे पंख रवि तेज अपारा। परेउँ भूमि करि घोरचिकारा॥

अर्थ—जटायु सूर्य का तेज न सह सका सो तो लौट आया परन्तु मैं अभिमानवश सूर्य के बहुत ही समीप चला गया। (तो फिर क्या) सूर्य के तेजका तो पारावार ही नहीं, मेरे पंख जल गये सो भारी चिंघाड़ मार कर मैं पृथ्वी पर आ गिरा॥

---

‡ सुनि खग हर्ष शोक युत बानी—अंगद के वचन, जटायु के विषय में, सम्पाती को हर्ष युत इसहेतु हुए कि उस ने रामचन्द्र जी के कार्य में उन के वहां न रहने पर, शक्त्यानुसार सहायता की इसहेतु बैकुण्ठबास पाया परन्तु शोकयुत इस हेतु कि जटायु का मरण सुना॥

चौ०—मुनि इक नाम * चन्द्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोहीं ॥
बहु प्रकार तिन ज्ञान सुनावा। देह जनित अभिमान छुड़ावा ॥

अर्थ—इतने में चन्द्रमा नाम के एक मुनि जी ने मुझे देखा तो उन के जी में दया आगई। उन्होंने मुझे कई प्रकार से ज्ञान की बातें सुनाई और मेरे पक्षी प्रकृति से उत्पन्न हुए अभिमान को दूर किया ॥

चौ०—त्रेता ब्रह्म मनुजतनु धरि हैं। तासु नारि निशिचरपति हरि हैं ॥
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिनहिं मिले तुम होव पुनीता ॥

अर्थ—त्रेतायुग में परमात्मा मनुष्य का शरीर धारण करैंगे उन की स्त्री को राक्षसों का राजा हर लेगा। उस का पता लगाने के हेतु प्रभु जी दूतों को भेजैंगे उन के दर्शनों से तुम पवित्र हो जावोगे ॥

चौ०—‡जमहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिनहिं देखाय दिहेसु तैं सीता ॥
मुनि की गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मम वचन करहु प्रभु काजू ॥

अर्थ—तुम्हारे (जले हुए) पंख फिर से जम आवैंगे तुम चिन्ता मत करो (जब दूत आवें तब) तुम उन्हें सीता जी बता देना। मुनि की बानी आज ठीक उतरी तुम मेरे कहने पर ध्यान देओ और स्वामी का कार्य सिद्ध करो ॥

चौ०—गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावण सहज अशंका ॥
तहँ अशोक उपवन जहँ रहई। सीता बैठि सोचरत अहई ॥

अर्थ—त्रिकूट नाम के पर्वत पर लंका बनी हुई है वहां पर स्वभाव ही से निधड़क रावण का निवास है। वहां पर अशोक वृक्षों के बग़ीचे में बैठी हुई सीता जी दुःख में डूबी रहती हैं ॥

दोहा—मैं देखौं तुम नाहिं न, गीधहिं दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउँ नतु करतेउँ, कछुक सहाय तुम्हार ॥ २९ ॥

अर्थ—(सीता जी को) मैं तो देख रहा हूं परन्तु तुम उन्हें नहीं देख सक्ते, गीध की दृष्टि बहुत दूर तक फैलती है। मैं अब बुड्ढा हुआ नहीं तो कुछ तौभी तुम्हारी सहायता करता ॥

---

* मुनि चन्द्रमा—दक्षिण समुद्र के किनारे महेन्द्र पर्वत पर रहने वाले एक ऋषि का नाम है (देखो संपाती की कथा) ॥

‡ जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिनहिं देखाय दिहेसु त सीता—इस के आगे का २३ लकीरों का क्षेपक पुरौनी में देखो ॥

चौ०—जो लांघै शत योजन सागर। करै सो रामकाज मतिआगर॥
जो कोइ करै राम कर काजू। तेहि सम धन्य आन नहिं आजू॥

अर्थ—जो चार सौ कोस समुद्र के पार जावे वही चतुर रामचन्द्र जी के कार्य को सिद्ध करेगा। जो कोई रामचन्द्र जी का काम करेगा इस समय उस के समान कोई दूसरा धन्य नहीं है॥

चौ०—मोहि विलोकि धरहु मन धीरा। रामकृपा कस भयउ शरीरा॥
पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं॥

अर्थ—मुझे देखकर धीरज धारण करो तुम देखते नहीं कि रामचन्द्र जी की कृपा से मेरा शरीर कैसा हो गया (अर्थात् जले हुए पंख फिर जम उठे)। पापी प्राणी भी यदि उन के नाम का भजन करते हैं तो वे भी इस बड़े भारी संसाररूपी समुद्र से पार हो जाते हैं॥

चौ०—तासु दूत तुम तजि कदराई। राम हृदय धरि करहु उपाई॥
अस कहि उमा गीध जब गयऊ। तिन के मन अति विस्मय भयऊ॥

अर्थ—तुम तो उन के दूत हो, कचाई को छोड़ो और रामचन्द्र जी का ध्यान धर के उपाय करो। महादेव जी बोले कि हे पार्वती! ऐसा कहकर जब संपाती उड़ गया तब सब के हृदय में बड़ा आश्चर्य हुआ॥

चौ०—निज निज बल सब काहू भाखा। पार जाइ कर संशय राखा॥
जरठ भयउँ अब कहइ ऋछेशा। नहिं तनु रहा प्रथम बल लेशा॥
जबहिं * त्रिविक्रम भयउ खरारी। तब मैं तरुण रहेउँ बलभारी॥

शब्दार्थ—ऋछेशा, शुद्धरूप ऋक्षेश (ऋक्ष = रीछ+ईश = राजा) = रीछों का राजा, जामवन्त। लेशा = थोड़ासा॥

---

* त्रिविक्रम (त्रि = तीन+वि = विशेष+क्रम = क़दम) = तीन बड़े भारी क़दम वाले अर्थात् तीन पैर से पृथ्वी आदि को नापने वाले वामन अवतार। लिखा है हरिवंश में—

त्रिरित्येव त्रयोलोकाः कीर्त्तितामुनि सत्तमैः।
क्रमते तांस्तथा सर्वान् त्रिविक्रमो जनार्दनः॥

श्रेष्ठ मुनियों ने 'त्रि' का अर्थ 'तीन लोक' किया है, इन सब को आक्रमण करते हैं उन्हीं परमेश्वर को त्रिविक्रम कहते हैं, देखो बलि की कथा अयोध्या कांड की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० ५५।

और इस के आगे का ३० लकीरों का क्षेपक पुरौनी में देखो॥

अर्थ—सब बानर अपनी अपनी उड़ान शक्ति का वर्णन करने लगे परन्तु लंका तक पहुंचने में सभी को संदेह था। यथा—जामवंत बोले मैं अब बूढ़ा हुआ इसहेतु पहिले पराक्रम का अंशमात्र भी मेरे शरीर में नहीं है। अहो! जब परमेश्वर ने वामन अवतार धारण किया था उस समय मेरी तरुण अवस्था थी और मैं बड़ा बलशाली था॥

दोहा—बलि बाँधत प्रभु बाढ़यऊ, सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्ह मैं, सात प्रदच्छिण धाइ॥ ३०॥

अर्थ—बलि को बांधते समय परमेश्वर ने विराटरूप धारण किया उस स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सक्ता, परन्तु (इतने भारी शरीर की) मैं ने दोही घड़ी में सपाटे से सात परिक्रमा कीं।

चौ०—अङ्गद कहइ जाउँ मैं पारा। जिय +संशय कछु फिरती बारा॥
जामवंत कह तुम सब लायक। पठइय किमि सबही कर नायक॥

अर्थ—अंगद कहने लगे मैं परले पार जा सक्ता हूं परन्तु लौटने के विषय में कुछ हृदय में शंका है। जामवंत जी बोले तुम सब प्रकार से योग्य हो परंतु सब के अगुआ को मैं कैसे भेजूं॥

चौ०—‡कहइ रिच्छपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना॥
पवनतनय बल पवनसमाना। ×बुधि विवेक विज्ञान निधाना॥

+ जिय संशय कछु फिरती बारा—अंगद की अवस्था छोटी थी इसहेतु बड़े बलशाली और पराक्रमी होने पर भी इन में १०० योजन जाने की शक्ति तो थी परन्तु उतनी ही दूर फिर लौट आने का संशय था. इसी हेतु जामवंत ने उन्हें जाने की राय नहीं दी और भी जिन कारणों से जाने को रोका वे सब राम रसायन रामायण से उद्धृत किये जाते हैं।

दोवई छंद—तब अंगद भाषी हम इत ते कूदि उतै ध्रुव जावैं।
फिर उत ते इत आगम के हित निश्चय नाहिं कहावैं॥
सुनि ऋच्छेश कही तुम नृपसुत दुहुँ दिशि गमन समर्था।
पै हौ अधिप बनै किमि पठवत प्रभु बिन होत अनर्था॥

‡ कहइ रिच्छपति सुनु हनुमाना—जामवंत के आशय को राम स्वयंवर में यों लिखा है—

दोहा—लिये निशानी देन कौ, सुचित बैठ केहि हेत।
कस न कूदि सागर सपदि, सिय सुधि लाय न देत॥

× बुधि विवेक विज्ञान निधाना—यहां कोई २ पंडित यह शंका कर बैठते हैं कि सब ने अपना बल बताया परंतु हनुमान् जी क्यों चुप चाप बैठे रहे, यद्यपि वे बलवान् थे और रामचंद्र

अर्थ—जामवान् बोले हे बलवान् हनुमान् ! सुनो, तुम क्यों चुप चाप बैठे हो। तुम तो वायु के पुत्र हो, तुम्हारा बल भी वायु तुल्य है और विशेष ज्ञान से परिपूर्ण हो ॥

चौ०—† कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं तात होइ तुम पाहीं॥
रामकाज लगि तव अवतारा। ‡ सुनि कपि भयो पर्वताकारा॥

अर्थ—हे प्यारे ! संसार में ऐसा कौन सा कठिन काम है जिसे तुम न कर सको। तुम्हारा अवतार ही तो रामचन्द्र जी के निमित्त है (इन वचनों को) सुनते ही हनुमान् फूल कर पर्वत के समान हो गये॥

चौ०—कनकवरण तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं लांघौं जलनिधि खारा॥

अर्थ—इन के शरीर का तेज सुवर्ण के समान था मानो ये सब पर्वतों के दूसरे राजा हों (पर्वतों का राजा सुमेरु कहा गया है)। बारंबार सिंह कीसी गर्जना कर यह दर्शाया कि इस खारे समुद्र को सहज ही में पार कर जाऊंगा॥

चौ०—* सहित सहाय रावणहि मारी। आनउँ इहां त्रिकूट उपारी॥
जामवंत मैं पूछउँ तोही। उचित सिखावन दीजेहु मोही॥

जी के पास से मुद्रिका भी लाये थे ? इस का समाधान यह है कि शाप के कारण इन्हें अपनी भारी शक्ति का ज्ञान नहीं रहता था जब तक कि कोई इन्हें उस का स्मरण न करावे जैसा हनुमान् जी के जीवन चरित्र में लिखा है—

चौ०—पवन पुत्र बल विस्मृत रहई। संतत सरल चित्त निरबहई॥
जब कोऊ बल सुरति करावै। तबहिं वीरता कपि तन आवै॥

† कवन सो काज कठिन जगमाहीं। जो नहिं तात होइ तुम पाहीं—के आगे ५४ लकीरों का क्षेपक पुरौनी में देखो॥

‡ सुनि कपि भयो पर्वताकारा—रामस्वयम्वर से—(कवित्त)

वचन निवेरे ऋक्षपति के घनेरे सुनि, बाढ़ो धीर रंग के उमंग अंग तेरे हैं।
नयननि को फेरे औतरेरे दिशि दक्षिण पै, भुजन को हेरे त्योंहीं पूँछ को मुरेरे हैं॥
मानि लंक नेरे ह्वै निशंक महावीर टेरे, मारि करौं ढेरे भट लंकापति केरे हैं।
राम केरे सारँग ते चलैं प्रेरे सायक ज्यों, जैहौं लंक सुनौगे सबेरे गुण मेरे हैं॥

* सहित सहाय रावणहि मारी। आनउँ इहां त्रिकूट उपारी—

कवित्त—लीलहि लांघि समुद्र सखा भुज दंडन सों बन बाग बिथोरौं।
एकहि लात दलौं दल दानव लंक उतंक लै अंबुधि बोरौं॥ (भूषन)

अर्थ—सेना समेत रावण को मार त्रिकूट पर्वत ही को यहां उखाड़ लाऊंगा। हे जामवंत ! मैं तुम से पूछता हूं तुम मुझे यथा योग्य सिखापन देओ॥

चौ०-इतना करहु तात तुम जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज भुजबल राजिव नैना। कौतुक लागि संग कपिसैना॥

अर्थ—हे प्यारे ! तुम केवल इतना ही करो कि जाकर सीता को देख करके उन के समाचार आ सुनाओ। पीछे से कमलनयन रामचन्द्र जी अपने भुजदण्ड के प्रताप से खिलवाड़ मात्र के लिये बानरी कटक ले चढ़ धावेंगे॥

छन्द-कपिसेन संग सँघारि निशिचर राम सीतहि आनि हैं।
त्रैलोक पावन सुयश सुर मुनि नारदादि बखानि हैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावई।
रघुवीरपदपाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी बानरों की सेना को साथ ले राक्षसों का नाश कर सीता जी को ले आवेंगे। उस समय तीनों लोकों में इस पवित्र कीर्त्ति को देवता और नारदादि मुनि गावेंगे। जिसके सुनने गाने कहने अथवा समझने से मनुष्य मुक्ति क प्राप्त होंगे। उस यश को रामचन्द्र जी के कमलस्वरूपी चरणों पर भौंरे के समान मैं तुलसीदास गायन करता हूं॥

दोहा-भवभेषज रघुनाथयश, सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन कर सकल मनोरथहिं, सिद्ध करहिं त्रिपुरारि॥

सो०-नीलोत्पल तन श्याम, कामकोटि शोभा अधिक।
सुनिय तासु गुणग्राम, जासु नाम अघ खग बधिक॥२१॥

शूरन मारि उपारि त्रिकूट उजारि अशोक अछय शिर-फोरौं।
बंदित वीर बिहीन पुरी करि रावण के दश मस्तक तोरौं॥

और भी राम रसायन रामायण से—

कवित्त—मेरो ना प्रभाव सीताराम की कृपा ते यह रसिकबिहारी सत्य प्रण ठहराऊँ मैं।
उछलि उतंक तिहुँ लोकहि उलंक आऊं सिंधु बापुरे की काह गिनती गनाऊँ मैं॥
जो पै रघुराज कपिराज युवराज और ऋच्छराज काहू की रजाय नेक पाऊँ मैं।
एक ही फलंका में निशंका उत जाऊं फेरि हंका दै सु लंका को उरवार इतलाऊँ मैं॥

(दोहे का) अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के गुणानुवाद संसाररूपी रोग की औषधि तुल्य हैं। जो स्त्री पुरुष सुनैंगे उन के सम्पूर्ण मनोरथों को श्री शंकर जी सिद्ध करैंगे॥

(सो० का) अर्थ—(तुलसीदास जी कहते हैं कि हे भक्तजन!) जिन का शरीर नीले कमल के समान श्यामला है, जिस की शोभा कोटानिकोटि कामदेवों की शोभा से अधिक है और जिन का नाम पापरूपी पक्षी को बहेलिये के समान है ऐसे श्री रामचन्द्र जी के गुणानुवाद सुनिये॥

सवैया—श्री रघुनायक को यश पावन, भेषज है भवरोग हरैया।
पारवतीपति सिद्ध करैं, तिन के सुमनोरथ जे हैं सुनैया॥
नील सुकंज छटा जिन की, प्रभु कोटि अनंगन्ह केर लजैया।
चित्त 'विनायक' दे के सुनौ, तिनके गुण ग्राम हैं पाप नसैया॥

दो०—संवत ग्रह ऋतु अंक महि, पौष शुक्ल तिथि सात।
कह्यो 'विनायक' तिलकयुत, किष्किन्धा विख्यात॥

इति श्री रामचरितमानसे सकल कलिकलुष विध्वंसने विशुद्ध
सन्तोष सम्पादनो नाम चतुर्थः सोपानः समाप्तः
श्री सीतारामचंद्रार्पणमस्तु।



किष्किन्धा सार।

पंपा सरोवर से आगे बढ़ कर श्री रामचन्द्र जी लछमण समेत ऋष्यमूक पर्वत के समीप जा पहुँचे. जब सुग्रीव ने ऐसे प्रतापशाली दो वीरों को आते देखा. तब उस ने अपने मुख्य मंत्री हनुमान् को उन के पास भेजा. हनुमान् जी उन के पास गये और उन्हें अपने कांधों पर बिठला कर सुग्रीव के पास ले आये, दोनों की मित्रता हुई. रामचन्द्र जी की कुमक से सुग्रीव ने बालि को जा ललकारा, दोनों में मल्लयुद्ध हुआ. परंतु सुग्रीव को हारता हुआ देख रामचन्द्र जी ने अपनी प्रतिज्ञा अनुसार एक ही बाण से बालि का काम तमाम कर दिया. श्री रामचन्द्र जी ने लछमण के द्वारा सुग्रीव को उस के छीने हुए राज्य पर अभिषिक्त कराया और अंगद को युवराज बनाया।

वर्षा ऋतु में प्रवर्षण गिरि पर बसते हुए श्री रामचन्द्र जी ने वर्षा और शरद ऋतु की शोभा तथा अनेक नीति शिक्षा से भरी हुई कथायें लछमण से कहीं. शरद ऋतु में रामचन्द्र जी ने लछमण को सुग्रीव के पास भेजा. वे उसे लिवा लाये. रामचन्द्र जी ने कहा कि अब विलम्ब मत करो और सीता की खोज में बानरों को भेजो. इतना सुनते ही सुग्रीव ने सब दिशाओं में बहुत से बानर भेजे।

चलती बार जब सब के पश्चात् हनुमान् जी ने रामचन्द्र जी को प्रणाम किया तब उन्हों ने अपनी मुद्रिका दी और कहा कि हमारे विरह का दुःख सीता को सुना कर जल्दी लौट आना. दक्षिण दिशा वाले बानर प्यास से व्याकुल हो स्वयंप्रभा के स्थान में गये और वहां से समुद्र के किनारे जा पहुँचे. वहां पर जटायु के भाई संपाती से भेंट हुई. उस ने कहा कि मैं देख रहा हूं कि सीता जी अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हैं, तुम्हें न दिखेंगी. तुम में से जो कोई सौ योजन समुद्र लांघ कर जावेगा वही सीता जी की सुध लावेगा. सब बानरों ने अपना अपना बल कह सुनाया परन्तु १०० योजन जाकर लौट आने का बल किसी का न निकला. निदान जामवंत के कहने से हनुमान् जी इस कार्य के लिये तैयार हुए।

श्रीरामायण किष्किंधाकाण्ड के श्री विनायकी टीका की पुरौनी

आवश्यक पिंगल

मात्रा और गणों का विचार अयोध्या काण्ड किंवा आरण्यकाण्ड के श्री विनायकी टीका की पुरौनी में मिलेगा॥

इस कांड के आदि में दो श्लोक दिये हैं वे शार्दूल विक्रीड़ित छन्द के हैं। सोरठा, चौपाई दोहा और हरिगोतिका इन सब छन्दों का पिंगल विचार अयोध्याकांड और आरण्यकांड की पुरौनी में लिख चुके हैं॥

॥ क्षेपक ॥

सूचना—छोटे २ क्षेपकों को तो सुभीते के हेतु टिप्पणी के रूप में लिख चुके हैं. बड़े बड़े क्षेपक अब यहां लिखे जाते हैं॥

पृ० २० सखा वचन सुन हरषऊ, कृपासिंधु बलसींव—के आगे का क्षेपक—

चौ०—पूछहिं प्रभु हँसि जानहिं ताही। महावीर मर्कट कुल माही॥
तव अस्थान प्रथम केहि ठामा। कहु निज मात पिता कर नामा॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। कहहुँ आदि ते उत्पति गाई॥
ब्रह्मा नयनन कीच निकारी। लै अँगुरी भुइँ ऊपर डारी॥
बानर एक प्रगट तहँ होई। चंचल बहु विरंचि बल सोई॥
तेहि कर नाम धरा विधि जानी। ऋच्छराज तेहि सम नहिं ज्ञानी॥
विधि पद नाय कीश अस कहई। आयसु कहा मोहि प्रभु अहई॥
विचरहु बन गिरि बन फल खावहु। मारहु निश्चर जे जहँ पावहु॥
सो ब्रह्मा की आज्ञा पाई। दक्षिण दिशा गयउ रघुराई॥

दो०—ऋच्छराज तहँ विचरई, महावीर बलवान।
निश्चर पावत ही हने, शिर में कठिन पखान॥

चौ० फिरत दीख इक कूप अनूपा। जल परछाईं दीख निज रूपा॥
तब कपि सोच करत मन माहीं। केहि विधि रिपु रहिहहिं हयां आहीं
ताहि देख कोपा कपि वीरा। सब दिशि फिरा कूप के तीरा॥
जो जो चरित कीन्ह कपि जैसा। सो सो चरित दीख तहँ तैसा॥
गरजा कीश सोइ सो बोला। कूदि परा जल माहीं डोला॥
सो तनु पलट भई सो नारी। अति अनूप गुण रूप अपारी॥
सुनहु उमा अति कौतुक होई। आइ बहोरि ठाढ़ि भइ सोई॥

सुरपति दृष्टि परी तेहि काला। तेहि तब विंदु परा तेहि बाला॥
मोहे भानु देखि छवि सीवा। छूटा विंदु परा तेहि ग्रीवा॥
दो०—इन्द्र अंश ते वालि भा, महाबीर बल धाम।
दिनकर सुत दूसर भयो, तेहि सुग्रीवउ नाम॥
चौ०—पुनि तत्काल सुनहु रघुवीरा। नारी पलट भयो सोइ वीरा॥
तब ऋक्षराज प्रीति मन भयऊ। हमहिं संग ले विधि पहँ गयऊ॥
करि प्रणाम सब चरित बखाना। कह अज हरि इच्छा बलवाना॥
तब विधि हमहिं कहा समुझाई। दक्षिण दिशा जाहु दोउ भाई॥
किष्किंधा तुम कर अस्थाना। रंग भोग बहु विधि सुख नाना॥
जो प्रभु लोक चराचर स्वामी। सो अवतरहिं नाथ बहु नामी॥
रघुकुलमणि दशरथ सुत होई। पितु आज्ञा विचरहिं बन सोई॥
नरलीला करिहैं विधि नाना। पैहौ दरश होइ कल्याना॥
दो०—तब हर्षे हम बंधु दोउ, सुनि के विधि के बैन।
जप तप योग न पावहीं, सो हम देखब नैन॥
चौ०—विधिपद बंदि चले दोउ भाई। किष्किंधा मैं आये धाई॥
वालीराज कीन्ह सुखदाता। बन बसि दैत्य हने दोउ भ्राता॥
मयदानव के सुत दोउ वीरा। मायावी दुन्दुभि रणधीरा॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। विधि गति अ.ल.त्र जानि नहिं आई॥
पृ० २४ सुनि सेवक दुख दीन दयाला। फरकि उठीं दोउ भुजा विशाला—के आगे का क्षेपक—
दो०—सुनत वचन बोले प्रभू, कहहु शाप की बात।
दुन्दुभि दैत्य सो कवन विधि, वालि हत्यो तेहि तात॥
समदर्शी शीतल सदा, मुनिवर परम प्रवीन।
मोहि बुझाइ कहहु सब, शाप कौन हित दीन॥
चौ०—इमि बूझत भे कृपा निकेता। वालिहि शाप भयो केहि हेता॥
बोले तब कपीश मन लाई। दुन्दुभि दैत्य महा बल दाई॥
मल्ल युद्ध की गति सब जानै। और बली नहिं कोउ मन मानै॥
एक बार जलनिधि तट आयो। आय के जलनिधि मांझ अथायो॥
सब ही कटि प्रमाण जल भयऊ। करि अभिमान मथत सो लयऊ॥
मथत सिंधु व्याकुल सब गाता। जीव जंतु सब भये निपाता॥
तब अकुलाय सिंधु चलि आवा। वचन विचारिहि ताहि सुनावा॥
तुम बल सर वर और न कोऊ। वचन विचारि कहौं मैं सोऊ॥
हिमगिरि बल बरणो नहिं जाई। तेहि जीतन कर करहु उपाई॥

चौ—वचन सुनत ताहीं चलि आयो। देखि हिमाचल अति मन भायो॥
ताल ठोक हिम लीन्ह उठाई। तब हिमगिरि बहु विनती लाई॥
तुम्हरे बल सरवर मैं नाहीं। ताते मान न करौं तुम्हाहीं॥
पंपापुर तुमहीं चलि जाहू। वालि महाबल निधि अवगाहू॥
सुनत वचन तहँ ही चलि आवा। वालि वालि कहि कै गुहरावा॥

दोहा—वेष किये सो महिष कर, गर्व बहुत मन माहिं।
आयो निकट सो गर्जिकर, मनहुँ तनिक भय नाहिं॥

चौ०—मही मर्दि तरु करै निपाता। गर्जेउ घोर गिरा जनु घाता॥
ठोकेउ ताल वज्र जनु परहीं। तेहिं कर मर्म जानि सब डरहीं॥
पंपापुर व्याकुल सब काहू। चंद्र ग्रसन जनु आयो राहू॥
सुनत वालि धावा तत्काला। देखि असुर भुज दंड कराला॥
भिरे युगल करि वर की नाईं। मल्ल युद्ध कछु वरणि न जाईं॥
चारि याम सब कौतुक भयऊ। मुष्टि प्रहार तासु कपि दयऊ॥
गिरा अवनि तब शैल समाना। जीव जंतु तरु टूटेउ नाना॥
पुनि तेहि वालि युगल करि डारा। उत्तर दक्षिण कीन्ह प्रहारा॥
तेहि गिरि पर मुनि कुटी सुहाई। रुधिर प्रवाह गयो तहँ धाई॥
ऋषि मतंग कर तहां निवासा। गयो सो ऋषि मज्जन सुखरासा॥
मज्जन करि मतंग ऋषि आये। देखि कुटी अति क्रोध बढ़ाये॥
तबहिं विचार कीन्ह मन माहीं। यक्ष एक चलि आवा ताहीं॥
तिन तब सकल कही इतिहासा। सुनि मतंग भे क्रोध निवासा॥

दो:—दीन्ह शाप तब क्रोध करि, नहिं मन कीन्ह विचार।
वालि नाश गिरि देखत, होइ जाय तनु छार॥

चौ०—तेहि भय यहां वालि नहिं आवत। ऋषि के वचन मानि भय पावत॥
तेहि भरोस इहि गिरि पर रहऊँ। वालि त्रास नहिं विचरत कहऊँ॥
इहि दुख ते प्रभु दिन औ राती। चिंता बहुत जरति अति छाती॥
जानहु मर्म सकल रघुनाथा। यहां रहौं हनुमत लै साथा॥
सो वृत्तांत वालि सब जाना। यहां न आवत कृपानिधाना॥
सुनि सुग्रीव वचन भगवाना। बोले हरि हँसि धरि धनु बाना॥

पृ० २७ कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा। वालि महाबल अति रण धीरा—के आगे का क्षेपकः—

चौ०—सप्तताल यह कृपानिधाना। बेधै सबहि एक ही बाना।
चन्द्र मंडलाकार सुहाई। परै एक वाणहि महि आई॥
ताके कर वाली प्रभु मरई। ना तौ श्रम मिथ्या कोउ करई॥
सुनि बोले प्रभु शीतल बानी। कपि चतुरई तोरि मैं जानी॥

इहि विधि बल का करहु परेखा। कहहु ताल कर चरित विसेखा॥
सुनि सुग्रीव हिये हर्षाना। ताल वृक्ष कर चरित बखाना॥
एक दिवस वाली वन गयऊ। वृक्ष फूल फल देखत भयऊ॥
मन हर्षात सात फल लीन्हा। जल मज्जन तें शुचि सो कीन्हा॥

दो०—ले आतुर चलि आयऊ, पंपापुर जगदीश।
करि अस्नान ध्यान पुनि, नाइ इष्ट कहँ शीश॥

चौ०—राखे फल जे मग करि दर्पा। प्रभु तापर बैठा इक सर्पा।
शशि मंडल समान फन काढ़ी। देख कपीश महारिस बाढ़ी॥
अरे दुष्ट भख मोर नशावा। यमपुर आज सदन तैं छावा।
ताहित सीस श्राप ले मोरा। वृक्ष फूटि निकले तनु तोरा॥
जहाँ जाय कर बैठा वेदी। निकसे ताल वृक्ष तनु छेदी।
क्रोध निवारि वालि गृह आवा। समाचार यह तक्षक पावा॥

दो०—पुत्र शाप सुनि क्रोध करि, मन दुख भयो अपार।
निश्चय मारै वालि को, जो यह बेधै तार॥

चौ०—सो सब समाचार मैं जानव। अस तब कहब नाथ मन मानव॥
चौदह भुवन एक रस ज्ञाना। व्यापिरह्यो सब जीव समाना॥
सो प्रभु सुनत दास की बानी। निरखि बदन बोले धनु पानी॥

पृ० ५८ तब हनुमंत बुलाये दूता। सब करि कर सन्मान बहूता॥
भय अरु प्रीति नीति दिखराई। चले सकल चरनन्ह शिर नाई॥ } के आगे का क्षेपक—

चौ०—सुनि पितु वचन बोल युवराजू। बिन हनुमन्त होइ नहिं काजू॥
जानैं हैं गिरि कन्दर सागर। चतुर विचक्षण बुधिबल नागर॥
केशरि पुत्र पवन कर अंसा। पठवहु नाथ करहु परशंसा॥
तब सुग्रीव मारुती। हँकारा। राम काज जनि लावहु बारा॥
पति आज्ञा धरि सीस सिधाये। मारि फलंग पुरब दिशि आये॥
सुनि हनुमंत मिलन सब आवहिं। माथ नाय हित वचन सुनावहिं॥
कारण कौन कीन्ह श्रम भारी। तुम किष्किन्धा नाथ अधारी॥
हम लायक जो कारज होई। नाथ सीस धरि मानव सोई॥
सुनि कपि कहा न लावहु बारा। तुमहिं वालि लघु बंधु हँकारा॥
आतुर जाहु न विलँब करेहु। परे काज भारी मन धरेहु॥
सुनत वचन सब चले तुरंता। जय सुग्रीव कहि गगन गहंता॥

दो०—असी लाख अरु सात शत, कपि दल वर बल बंड।
नभ मारग कूदत चले, गय गवाक्ष बलि दंड॥

चौ०—पठै तिनहिं तरक्यो हनुमाना। रोहित पर्वत जाय तुलाना॥
दुर्धर्षण सब बात सुनाई। चला वीर कदली बन धाई॥
गज सन कह सुनु वानर राजा। परा कठिन सुग्रीवहि काजा॥
निज दल संग लाय सब लेहु। धीरजता निजपति को देहु॥
भलेहिं नाथ कहि सब उठि चले। वसुधा हली शेष कलमले॥
पद्म सात दल असी करोरी। चले द्विरद गज भई अँधेरी॥
हनुमत व्याद्दर पर्वत आवा। जेठ पुत्र बल वीर बुलावा॥
तीस लाख दल साठ हजारा। पवन पुत्र सब कीन्ह जुहारा॥
कारज होय सो आयसु दीजै। इतना श्रम केहि कारण कीजै॥
आज्ञा करिय होय जो काजा। कुशली है किष्किन्धा राजा॥
कपिपति रघुपति कथा सुनाई। चला पवनसुत बिदा कराई॥
धुन्धकार पर्वत नियराना। कह तेहि थो खँड कीन्ह पयाना॥
छपन कोटि वानर ले साथा। करी प्रणाम चले कपिनाथा॥
तब हनुमत अंजनि गिरि आवा। कुमुद नाम कपि वीर बुलावा॥
पद्म सात अरु लाख सतासी। धाये वीर महाबल रासी॥
गगन मार्ग जय राम कहंता। आयो नीलगिरी हनुमन्ता॥
जहँ रह नील नाम कपि भारी। अग्नि पुत्र बल बुधि अधिकारी॥
मारुत सुत तेहि मर्म बुझावा। मेघ समान गर्जि कपि आवा॥
अर्बुद चारि चारि सत वारा। समर धीर सब सुभट जुझारा॥
गहे वृत्त आयुध बनचारी। चले सकल जय राम पुकारी॥
पवन पुत्र उत्तर दिशि गयऊ। बद्रिक आश्रम परसत भयऊ॥
शीघ्र गंधमादन पर गयऊ। जल तड़ाग देखत सुख लयऊ॥

दो०—गय गवाक्ष कहँ मिल्यो पुनि, बहु प्रकार समुझाय।
नाय माथ अस्तुति करत, चले वीर हर्षाय॥

चौ०—हनुमत अर्जुन गिरि पर आवा। तारा तात वीर तहँ पावा॥
नाम सुखेन महाबल वीरा। बुधि बल तेज समर रण धीरा॥
समाचार पुनि ताहि सुनावा। चलि हनुमन्त सुमेरहि आवा॥
कनक बरन सम दीपित काया। नेत्र लाल अति विपुल सुहाया॥
पवन प्रसून गगन पर गर्जे। राक्षस देखि काल सम तर्जे॥
लँगुर उठाय सीस पर लाये। मानहुँ मघवा धनुष सुहाये॥
एक एक सन वचन सुनावा। हनुमत चरणन्ह शिर तिन नावा॥
काया कष्ट कीन्ह केहि काजा। कुशल अहहिं किष्किन्धा राजा॥
कपि तहँ समाचार सब भाषा। चले दरश कारण अभिलाषा॥

दो०—दश करोरि नव लाख अरु, बीस सहस शत एक।
चले केसरी संग ले, करत चरित्र अनेक॥
चौ०—ताहिहु बिदा कीन्ह कपि पवना। रुद्र गिरी कैलाशहि गवना॥
कपि बल पुरदं ताहि कर नाऊँ। रखवारी अलकापुर गाऊँ॥
महातेज बल दुर्गम काया। मर्म चतुर जानत सब माया॥
सुनि सो मारुत सुत पहँ आवा। ले सँग सैन सीस तेहि नावा॥
पूछा कवन काज है नाथा। दीन्ह दरश हम भये सनाथा॥
तुम सुकंठ नृप के परधाना। आज्ञा देहु वेगि हनुमाना॥
कहा पवन सुत विलँब न लावहु। ले निज सैन पंपपुर धावहु॥
जय रघुवीर अनुज लघु वाली। सजि दल चले मेदिनी हाली॥
सिंहनाद करि पूँछ उठाये। दरश उछाह सकल उठि धाये॥
रहा न कोउ पवनसुत प्रेरा। मैनागिरिहि हिमाचल हेरा॥
प्रेम सहित कपि सकल बुलाये। आस वासना करत पठाये॥
अंडक नाम महाबल कीशा। चले कहत जय राम अहीशा॥
ताहि बिदा करि पवन कुमारा। विंध्याचल कहँ तुरत सिधारा॥
नाम बसन्त महा बलवाना। ले निज दल कपि निकट तुलाना॥
इन्द्र केलि बन के कपि जेते। हनुमत चरण गहे कपि तेते॥
आठ पद्म अरु सहस्र अठासी। चले तहां जहँ हैं अविनासी॥
राम काज हनुमत हिय धारे। कश्यप पर्वत जाय पुकारे॥
नाम मयंद महाबल वीरा। तेज पुंज अति दुर्ग शरीरा॥
इकैस कोटि बनचर ले साथा। पवन कुमारहि नायउ माथा॥
कहा पवनसुत जानहुँ तोही। धन्य भाग्य दर्शन भा मोही॥
करहु न बेर सुनहु बल सींवा। तुमहिं बुलाये वेगि सुग्रीवा॥
दो०—सुनत मयंद गयंद गति, उच्छलंत आकास।
अट्टहास गंभीर कर, सैन बुलायसि पास॥
चौ०—टिड्डी समान सैन उथलानी। चलते दिग्पालन भय मानी॥
आतुर चले गगन करि छाहीं। उठे लँगूर पतंग छिपाहीं॥
एक नील दल तीस करोरा। धावत एक एक बरजोरा॥
जय सिँह नाद करत बलदापा। देवन्ह हाथ पेट में चापा॥
रामस्वरूप हिये महँ आना। करि दल बिदा चला हनुमाना॥
रसना माँझ राम कर नामा। धवलागिरि कहँ कीन्ह पयाना॥
दुर्गंध नामक कपि बड़ योधा। ताहि बुलाय दीन्ह वर बोधा॥
आठ लाख शत बार गनाई। लै सँग सैन पंपपुर जाई॥

हनुमंत उदयागिरि पर आवा। बन्दर धाय परे तेहि पावा॥
कुन्द कुमुद बंदर जे गाये। जे जहँ रहे बनचर सब छाये॥
शब्द किलकिला नभ पर करहीं। बन सर शैल धरव सब धरहीं॥
दो०—राम काज करि पवनसुत, आये जहँ सुग्रीव।
मिले हर्ष अस्तुति करी, धन्य धन्य बल सींव॥

पृ० ६३ जनक सुता कहँ खोजहु जाई। मास दिवस मह आयहु भाई॥ के आगे का क्षेपक—

चौ०—तब सुकंठ दुइ दूत बुलाये। सुनतहि गव गवाक्ष उठि धाये॥
मन क्रम बच कर विविध प्रकारा। सुधा सरिस मधु वचन उचारा॥
सिय खोजन हित पूरब जावहु। राम काज कर आतुर आवहु॥
उदधि नदी गिरि कानन खोजहु। अमरावति कामावति जोहहु॥
सर वापी अरु कंदर देखउ। कूप अगाध खोहादिक पेखउ॥
तुम कहँ मिलै चलत मग कोऊ। सीता सुधि पूछहु तुम सोऊ॥
सात कोटि बानर परमाना। पूरब दिशि कहँ चले सुजाना॥
गव गवाक्ष यूथप बलधारी। तिन के संग भये हंकारी॥
दो०—पुनि सुग्रीव सुखेन कहँ, समुझाई सब गाथ।
आदर कर बोले वचन, गहु मयंद कहँ साथ॥

चौ०—उत्तर दिशि कहँ तुम चलि जाहू। सीता सुधि पूछहु सब काहू॥
मादनगंध मेरु धरणी धर। अर्जुन गिरि कैलाश महीधर॥
नीलगिरी अलकापुर नामा। खोजहु तात सकल शुभ धामा॥
जहँ लग धरणी करि है छोरा। तहँ लगि ढूँढ़हु आयसु मोरा॥
ऋषि तपसिन अरु यक्ष कुमारा। पूछहु सकल अनेक प्रकारा॥
काकभुशुंडि केर अस्थाना। जावहु तुम तहँ बीर सुजाना॥
जम्बु वृक्ष तहँ लगे अपारा। जम्बु द्वीप अस नाम पुकारा॥
दो०—गज समान फल लाग तहँ, सुधा समान सराहिं।
पक पक सो धरणी परहिं, सुर निज मनहिं सिहाहिं॥

चौ०—निर्मल जल निकसत अति पावन। सुर मुनि नर मज्जहिं मन भावन॥
अवध समीप जो नदी सुहाई। सरयू नाम भयो तेहि आई॥
फल भोजन करि अरु जल पाना। राम काज धर हृदय सुजाना॥
शूरसेन कर मंडप राजै। जहँ लोमश शांडिल्य विराजै॥
सुमिर राम खोजहु अब जाई। मास दिवस में आवहु भाई॥
राजा की सुन कर यह बाता। चले तुरत मन में हरषाता॥
पद्म एकादश बानर साथा। चले सकल सुमिरत रघुनाथा॥
पुनि सुग्रीव सुवीर बुलावा। अति हित सों यह वचन सुनावा॥

दो०—पश्चिमदिशि की ओर तुम, खोजहु सीतहि जाय।
राम काज कहँ तुरत करि, मोहि सुनावहु आय॥
दो०—सरिता सर बन गिरि गुहा, खोजत सब ही ठाम।
दश षट लख हरि जावहू, लै रघुपति कर नाम॥

पृ० ६५ कतहुँ होइ निशिचर सन भेटा। प्राण लेहिं इक एक चपेटा—के आगे का क्षेपकः—

चौ०—वज्रदंत इक राक्षस आवा। देखत कपिन परम दुख पावा॥
गगन सीस पुनि पाद पताला। रक्त नेत्र धावा जनु काला॥
देखि ताहि कोपेउ युवराजा। सन्मुख जाय ताहि सन बाजा॥
मल्ल युद्ध अति भयउ अपारा। एक एक सन करहिं प्रहारा॥
बालि सुवन तब हृदय विचारा। मुष्टिक एक तासु शिर मारा॥
रामरूप हिरदय में आनी। अर्द्ध ऊर्ध्व धरि चीर भवानी॥
जय जय शब्द सबन्ह तब गावा। मारुत सुत तब हृदय लगावा॥
बीस कोटि सँग सैन सुहाई। चले सकल कहि जय रघुराई॥
राम राम सब वन संचारा। मुक्त भये जड़ जीव अपारा॥
बहु दिशि चले करत गुण नाना। अमरलोक भूलोक सिहाना॥
हम बसि स्वर्ग लोक सुख पावे। धनि ये राम रूप अनुरागे॥
इहि विधि करत कोलाहल भारी। खोजत सबै वृक्ष वन वारी॥

पृ० ७२ जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिनहिं देखाय दिहेसु तैं सीता—के आगे का क्षेपकः—

चौ०—यह कहि मुनि आश्रम निज गयऊ। तेहि क्षण हृदय ज्ञान कछु भयऊ॥
पुनि संपाती वचन उचारी। सुनो गिरा मम यह हितकारी॥
पुत्र मोर सुपरण तेहि नाऊँ। सेवत मोहि सदा यहि ठाऊँ॥
दो०—क्षुधावंत इक दिन भयउँ, कही पुत्र सुन बात।
वेगि भक्ष ले आवहू, न तौ प्राण मम जात॥

चौ० सो आयसु धर सीस सिधावा। मोहि धीरज दे बहु समुझावा॥
नभ पथ होय महाबन गयऊ। गज मृगराज हनत बहु भयऊ॥
अस्त पतंग बहुरि घर आवा। क्षुधा विवश मैं क्रोध बढ़ावा॥
ज्ञान रंक मैं अधम अभागा। सुत को शाप देन तब लागा॥
गहि मम बाहु कहेउ समुझाई। सुनहु तात मम वच चित लाई॥
जब आरण्य गयउ मैं ताता। तहँ तब एक भयउ उत्पाता॥
बीस भुजा दश मस्तक ताही। आतुर जात लखा मग माही॥
संग नारि इक दिव्य अनूपा। कोउ नहिं बरणि सकै तेहि रूपा॥
जंतु जानि तेहि धरा पछारी। दीन्हों छोड़ निरखि सोइ नारी॥

करि मोहि विनय दखिन दिश गयऊ। यहि कारण बिलंब मोहि भयऊ॥
सुनत वचन मोहि लागि अँगारा। आपनि गति विचार हिय हारा॥
मैं तबु पंख हीन का करऊँ। आतुर जाय नाहिं अब धरऊँ॥

दो० पंख हीन अवसर गये, सुत बल कीन्ह धिकारि।
गहि मम निकट न लायहु, हती राम की नारि॥

चौ० तब मुनि बचन ध्यान हिय आवा। हिय में धीरज तब कछु पावा॥
इहि मिस राम जो दूत पठावहिं। सिय सुधि लेन अरण्यहिं आवहिं॥
देखत दरश होब बड़ भागी। तुव मग देखत मन अनुरागी॥
सदा राम कर सुमिरन करऊँ। निशि दिन मग जोवत दिन भरऊँ॥

पृ० ७३ जबहिं त्रिविक्रम भयउ खरारी। तब मैं तरुण रहेउँ बल भारी—के आगे का क्षेपक—

देखि समुद्र कि बार अपारा। यूथपतिन्ह मिल कीन्ह विचारा॥
को अस वीर जो नाघ पयोधी। आपनि मृत्यु आप अस शोधी॥
उमग समुद्र गगन लग ताका। जेहि विधि फिरै कुम्हारक चाका॥
जाय पताल समुद लगि बाढ़ा। सात समुद्र भये जनु ठाढ़ा॥
नीर तरंगैं लपकत कैसे। प्रलयकाल के जलधर जैसे॥
कच्छ मच्छ भर जीव अपारा। देखिय शैल समान अपारा॥
लहर २ धर धावत पानी। तर्षहि नयन मूँदि मुख बानी॥
जिमि बिन प्राण चित्र की पुतरी। तेहि विधि थकित भये बुध उतरी॥

दो—घेरि अंगदहिं तब कहयो अब कछु करहु उपाय।
है कोउ सुभट प्रवीण अस, समुद उलंघै जाय॥

चौ०—बोला विकट सुनहु युवराजू। योजन बीस उलंघहुँ आजू॥
नील कहा चालिस मैं जाऊँ। आगे परत मोर नहिं पाऊँ॥
नील बचन सुनि दुर्धरि कहई। पंचाशत योजन बल अहई॥
बोले नल दोउ भुजा उठाई। योजन साठि मोरि गत भाई॥
दधि मुख कह अस्सी उपहंता। योजन सात जान बलवंता॥
सुनहुँ बचन मम सुभट प्रवीना। आगे होइ मोर बल हीना॥
सुनि सब बचन बोल युवराजू। इहि बल होइ न प्रभु कर काजू॥
बहु दुख कृश अंगद कहँ देखी। जामवंत तब कहा बिसेखी॥
निरखि सकल मुख कह ऋच्छेशा। नहि मम पाछिल बल लवलेशा॥
सब कह बात सत्य सनमानी। मानी सत्य कर्म मन बानी॥
बूढ़ भयो अब बलहि सुनाऊँ। पल में लांघि सिन्धु कहँ जाऊँ॥
इक दिन बद्रिक आश्रम गयऊ। विपिन विलोकि महा सुख भयऊ॥
भक्षण करि फल पीन्हेउ पानी। बैठेउ एक शिला सुख मानी॥

ब्रह्मज्ञान इक विप्र सुजाना। बैठि अराधत श्री भगवाना॥
ताहि बधन इक दानव आवा। देखत मोहिं नयन जल छावा॥
मुनि भय देखि गयउ तेहि सामू। तेहि द्रुत तर कीन्हा अस कामू॥
योजन तीस शैल परमाना। लै उखाड़ दौड़ा बलवाना॥
लागत गिरत न सहा प्रहारा। भयो क्रोध तेहि अवनि पछारा॥
चीरेउ दोउ चरण करि रीसा। सुख पायो द्विज दीन्ह असीसा॥
सो बल नहिं प्रभु तुमहिं बखानू। सुनत बात सब अचरज मानू॥

पृ० ७५ कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं तात होइ तुम पाहीं—के आगे का क्षेपक-

तब उतपति अब कहौं सहेता। सुनहु सकल बैठहु एहि रैता॥
हिमचल पर्वत के इक पासा। कश्यप ऋषि तप तेज प्रकासा॥
दिग्गज इक ऐरावत की सम। आयो ऋषि सन्मुख दुर्धर यम॥
निरखि ताहिं ऋषि सकल सकाने। चले न चरण शिथिल भय माने॥
तात तोर तेहि बन के राजा। केशरि नाम तेज बल छाजा॥
सो गज मुनी देखि तेहि ओरा। हे कपि सकल शरण मैं तोरा॥
ऋषि दुख देखि दया मन माहीं। धायो तुरत तात बल बाहीं॥
भिरेउ ताहिं इक मुष्टक मारा। दोउ दशन गहि भूमि पछारा॥
पर्यो धरणि करि घोर चिकारा। तब मुनि होय प्रसन्न विचारा॥

दो०—पितु बल देखि विशेष पुनि, मुनिवर दीन्ह असीस।
मांगु मांगु वर भाव मन, हे द्विजपाल कपीस॥

चौ०—सानुकूल तपसी तहँ जानी। बोले तात जोरि युग पानी॥
जो प्रसन्न मो पर भगवाना। पुत्र देहु बल मरुत समाना॥
एवमस्तु कहि ऋषि सब गयऊ। आगिल चरित सुनहु जो भयऊ॥
अंजनि नाम तुम्हारी माता। रूप अपार जगत विख्याता॥
नवसत साजि सिंगार बनाई। बैठी शैल शिखर पर जाई॥
त्रिविधि समीर बहा सुखदाई। निरखत बन शोभा अधिकाई॥
चीर उड़ाय पवन सुख सर्सा। भुजा दीर्घ करि चाहत पर्सा॥
निरखत माता क्रोध करेही। लागी शाप देन पुनि तेही॥
मारुत मधुरे वचन कहेऊ। शाप न देउ वचन सुनि लेऊ॥
तुव पति ऋषिसन सुत वर मांगा। ताते परसि अंग तब लागा॥
निज काया धरि मिले न तोही। काहेक शाप देति तुम मोही॥
अस कहि पवन गुप्त हुइ रहेऊ। सो तव माता पति सन कहेऊ॥
अब तुव जन्म कहब सुख मानी। सुनहु सकल बन दीपक ज्ञानी॥
शुभ नक्षत्र शुभ घरी सुहाई। जनमत भयो देव बल पाई॥

मुनि वरदान पवन कर अंसा। बीरज तोहि पिता कर पर्सा॥
उदित भये दंपति हरषाने। करहिं केलि बन महँ सुख माने॥
एक दिवस माता की गोदा। करत रहेउ पय पान बिनोदा॥
देखेउ अरुण बन्धु छबि लाला। तड़कि अकाश गयो ततकाला॥
सुरज गहन जब भुजा पसारा। क्रोधे इन्द्र बज्र सो मारा॥
दो०—सहि प्रहार मन क्रोध करि, धाय पतँग गहि लीन्ह।
बाल अवस्था व्यसन ते, सूरज का मुख कीन्ह॥
चौ० अंधकार चारिहु दिशि भयऊ। जप तप दान धर्म रहि गयऊ॥
अस्तुति सुरन कीन्ह निज हेता। बोले शिव गुण ज्ञान निकेता॥
धरहु धीर जनि होहु उदासा। सब मिलि चलहु केशरी पासा॥
शिव बिरंचि सुर इंद्र समेता। आये सकल केशरी निकेता॥
कह सुत तोर सूर्य गहि लीन्हा। स्वास समीर रोकि दुख दीन्हा॥
तजहु भानु रहे आन भलाई। तुम कहँ सुयश होइ जग भाई॥
जो मन भाव लेहु वरदाना। तजहु पतंग होइ कल्याना॥
देव गिरा सुनि सुन्दर वानी। बोले तात जोरि युग पानी॥
अमर अजीत सबल बल सागर। सुतहि देहु वर देवन्ह नागर॥
रामभक्त अरु निकट निवासी। यह वरदान देव बलरासी॥
एवमस्तु सब देवन्ह कीन्हा। सूर्य समीर छाँड़ि तब दीन्हा॥
दै वरदान देव सब गयऊ। विचरे बनहि महा सुख भयऊ॥
मात तात कर प्राण समाना। इन्द्र जो हनी नाम हनुमाना॥
तजहु शोक मन आनहु धीरा। मोहि निश्चय सेवक रघुवीरा॥
हनुमत बचन सुनत सब काना। जय जय जय सब करहिं बखाना॥
नाचहिं एक एक गहि बाहीं। परमानंद भये मन माहीं॥
होई सिद्ध राम का काजा। अति सुख लह्यो हिये युवराजा॥
जामवंत आहीं नल नीला। अंगद आदि सुभट बल शीला॥
मिले सबहिं हनुमंतहि धाई। राम काज करि आवहु भाई॥
बोले पवनतनय सुख बानी। धरहु धीर कारज शुभ जानी॥
कह हनुमंत सिंधुतन देखी। रामरूप उर आन बिसेखी॥
तब रिछेश अस वचन उचारा। सादर सुनहु समीर कुमारा॥



वर्षा और शरद ऋतु के वर्णन के साथ ही साथ उत्तम शिक्षारूपी ४२ रत्न।

वर्षा ऋतु वर्णन।	शिक्षारूपी रत्न
(१) बादलों को देखकर मोर गण नृत्य करते हैं।	(१) हरिभक्त को देख कर सज्जन प्रेम में मग्न हो जाते हैं।
(२) बादल गर्जते हैं।	(२) विरही स्त्री पुरुष तड़पते हैं।
(३) बिजली चमकती है।	(३) खल गण कृतघ्नी होते हैं।
(४) बादल घने हो जाने से झुक कर बरसते हैं।	(४) बुद्धिवान् विद्या प्राप्त कर नम्र होजाते हैं और शिक्षा भी देते हैं।
(५) बूंदों की चोट से पहाड़ों को हानि नहीं पहुँचती।	(५) खलों के दुर्वचनों से सज्जनों के मन मलीन नहीं होते।
(६) पहाड़ी छोटी २ नदियां थोड़े ही पानी से उमड़ उठती हैं।	(६) दुष्ट मनुष्य थोड़ी ही संपत्ति से ऐंठने लगते हैं।
(७) वर्षा का शुद्ध जल मिट्टी के साथ मैला हो जाता है।	(७) जीव माया के वश अज्ञानी बन बैठता है.
(८) थोड़ा २ पानी एकत्र होकर तालाब भर जाते हैं।	(८) थोड़े ही थोड़े उत्तम गुण सीखते २ सज्जन ज्ञानवान् हो जाते हैं।
(९) नदियां बहते २ समुद्र में जाकर स्थिरता पाती हैं।	(९) जीव भटकते २ ईश्वर को प्राप्त कर विश्राम पाता है।
(१०) मार्ग हरी घास से छिप जाते हैं।	(१०) सद्ग्रंथ नास्तिकों के विवाद से निरर्थक समझे जाते हैं।
(११) दादुर ध्वनि सुहावनी लगती है।	(११) ब्रह्मचारियों की वेदध्वनि प्यारी लगती है।
(१२) बहुतेरे वृक्ष पल्लवित हो जाते हैं।	(१२) साधक लोग विवेक को पाकर हरे भरे होजाते हैं।
(१३) अकौआ और जवासा पत्रहीन हो जाते हैं।	(१३) दुष्ट गण भले राजा के राज्य में अपनी दुष्टता नहीं करने पाते।
(१४) धूल ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलती (सब कीचड़ हो जाती है)।	(१४) क्रोध से धर्म बे पता होजाता है।
(१५) खेती से भूमि सुशोभित हो जाती है।	(१५) दाता का द्रव्य दान करने से शोभा पाता है।
(१६) अंधेरी रात में जुगुनू चमकते हैं।	(१६) पाखंडी एकत्र होकर अपनी २ डींग मारते हैं।

(१७) अधिक पानी बरसने से बन्धान फूट जाते हैं।	(१७) स्वतंत्र होने से स्त्री कुमार्गी होजाती है।
(१८) खेतों का कूड़ा कचरा चतुर किसान उखाड़ डालते हैं।	(१८) बुद्धिवान् मद, मोह, मान आदि बुरी प्रकृतियों को त्याग देते हैं।
(१६) चक्रवाक स्थानांतर हो जाते हैं।	(१६) कलियुग में धर्म ठहरता नहीं।
(२०) ऊसर स्थान में घास नहीं ऊगती (पानी चाहे जितना बरसे)।	(२०) भक्तजनों के हृदय में काम नहीं उत्पन्न होता।
(२१) वर्षा ऋतु में अनेक प्रकार के जीव जन्तु बढ़ जाते हैं।	(२१) अच्छे राजा के राज्य में जन संख्या भी बढ़ जाती है।
(२२) बटोही मार्ग चलना बन्द कर किसी एक स्थान में टिक रहते हैं।	(२२) ज्ञान के उपजने से इंद्रियां चलायमान नहीं होतीं।
(२३) कभी २ वायु वेग से बह कर बादलों को उड़ा ले जाती है।	(२३) वंश में कुपुत्र के पैदा होने से धन और धर्म बिला जाते हैं।
(२४) कभी २ बादल छा जाते हैं और कभी २ सूर्य दिखाई देते हैं।	(२४) कुसंगति से ज्ञान लुप्त हो जाता है और सुसंगति से प्रकट हो जाता है।
शरद ऋतु का वर्णन।	**शिक्षा रूपी रत्न**
(२५) कास फूलते हैं।	(२५) मानो वर्षा के बुढ़ापे के बाल हों (अर्थात् ये वर्षा का बीत जाना सूचित करते हैं)
(२६) अगस्त्य तारा के उदय होने से मार्ग का पानी सूख जाता है।	(२६) संतोष आजाने से लोभ नहीं रहता।
(२७) नदी, ताल आदि का पानी स्वच्छ हो जाता है।	(२७) अहंकार और ममता के त्यागने से संत जनों के चित्त निर्मल हो जाते हैं.
(२८) वही पानी धीरे २ सूखने लगता है।	(२८) ज्ञानवान् धीरे २ ममता को छोड़ते जाते हैं।
(२६) कौड़ीला पक्षी देशान्तर से शरद ऋतु में लौट आते हैं।	(२६) सत्कर्म समय पर सुहावने लगते हैं।
(३०) पृथ्वी कीचड़ रहित होने से सुशोभित हो जाती है।	(३०) नीति के अनुसार चलने वाले राजा के उत्तम काम शोभा पाते हैं।
(३१) जल के घटने से मछलियां व्याकुल होती हैं।	(३१) बड़े कुटुम्ब वाले धन के घट जाने से घबराने लगते हैं।
(३२) मेघ रहित आकाश सुहावना लगता है	(३२) हरिभक्त आस त्याग सुशोभित होते हैं.

(३३) शरद ऋतु में भी कहीं २ थोड़ी वर्षा हो जाती है।	(३३) किसी विरले प्राणी को हरिभक्ति प्राप्त होती है।
(३४) राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिखारी जो वर्षा के कारण स्थानान्तर नहीं होते थे वे इस ऋतु में चल निकलते हैं।	(३४) ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ईश्वर भक्ति पा लेने से अपने २ आश्रम को छोड़ देते हैं।
(३५) गहरे पानी में मछलियां आनन्द से रहती हैं।	(३५) हरिभक्त आनंद में मग्न रहते हैं।
(३६) तालावों में फूले हुए कमल शोभा देते हैं।	(३६) अलक्ष्य ब्रह्म अवतार आदि से सुशोभित होते हैं।
(३७) चकई चकवा रात्रि में बिछोह के दुःख से दुःखी होते हैं।	(३७) दुर्जन दूसरों की संपत्ति देख कर जलते हैं।
(३८) पपीहा 'प्यासा २' ऐसा शब्द करता रहता है।	(३८) शिव द्रोही को विश्राम नहीं मिलता।
(३९) शरद ऋतु के दिन की गर्मी रात्रि में चन्द्र द्वारा शान्त हो जाती है।	(३९) संतजनों के दर्शनों से पाप नाश हो जाते हैं।
(४०) चकोर पक्षी चन्द्र को टकटकी बांध कर देखते हैं।	(४०) भक्तजन परमेश्वर को पाकर इकटक निहारते हैं।
(४१) ठण्ढ के मारे मच्छड़ और डांस मर जाते हैं।	(४१) ब्राह्मण से वैर करने के कारण वंश नाश हो जाता है।
(४२) वर्षा में बढ़े हुए जीव जन्तु शरद ऋतु में घट जाते हैं।	(४२) सच्चे गुरु के मिल जाने से संशय, भ्रम आदि मिट जाते हैं।

किष्किंधा काण्ड की प्रसिद्ध कहावतें:-

सोरठा—मुक्तिजन्म महि जान, ज्ञान खानि अघ हानि कर ।
जहँ बस शंभु भवानि, सो काशी सेइय कस न ॥

चौ०—तव मायावश फिरउँ भुलाना । तातें मैं नहिं प्रभु पहिचाना ॥
यदिप नाथ बहु अवगुण मोरे । सेवक प्रभुहिं परै नहिं भोरे ॥
नाथ जीव तव माया मोहा । सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा ॥
सेवक सुत पति मातु भरोसे । रहइ अशोच बनइ प्रभु पोसे ॥

दो०—सो अनन्य अस जाहि के, मति न टरै हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचरहि, रूप राशि भगवंत ॥

चौ०—सुनि सेवक दुख दीनदयाला । फरकि उठीं दोउ भुजा विशाला ॥
जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिनहिं विलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्र दुःख रज मेरु समाना ॥
जिनके अस मति सहज न आई । ते शठ हठि कत करत मिताई ॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा । गुण प्रगटइ अवगुनहिं दुरावा ॥
देत लेत मन शंक न धरहीं । बल अनुमान सदा हित करहीं ॥
विपति काल कर शत गुण नेहा । श्रुति कह संत मित्र गुण एहा ॥
आगे कह मृदु वचन बनाई । पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥
जाकर चित अहि गति सम भाई । अस कुमित्र परिहरेहि भलाई ॥
सेवक शठ नृप कृपण कुनारी । कपटी मित्र शूल सम चारी ॥
सखा सोच त्यागहु बल मोरे । सब विधि करब काज मैं तोरे ॥
सुख संपति परिवार बड़ाई । सब परिहरि करिहउँ सेवकाई ॥
ये सब रामभक्ति के बाधक । कहहिं संत तव पद अवराधक ॥
शत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं । मायाकृत परमारथ नाहीं ॥
अब प्रभु कृपा करहु इहि भाँती । सब तजि भजन करउँ दिन राती ॥
नट मर्कट इव सबहि नचावत । राम खगेश वेद अस गावत ॥
पुनि २ चितइ चरण चित दीन्हें । सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हें ॥

अनुजबधू भगिनी सुतनारी। सुनु शठ कन्या सम ए चारी॥
इनहिं कुदृष्टि विलोकै जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥

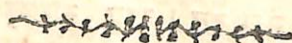
दो०—सुनहु राम स्वामी सुभग, चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पातकी, अंतकाल गति तोरि॥

चौ०—जन्म जन्म मुनि यतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥
क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम शरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम रोवा॥
उमा दारुयोषित की नाईं। सबहि नचावत राम गोसाईं॥
उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥
सुर नर मुनि सब की यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥
नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करै क्षण माहीं॥
अतिशय प्रबल देव तव माया। छूटै तबहि करहु जब दाया॥
नारि नयन शर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निशि जो जागा॥
लोभपाश जेहि गर न बँधाया। सो नर तुम समान रघुराया॥
भानु पीठ सेइय उर आगी। स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी॥
तजि माया सेइय परलोका। मिटहि सकल भव संभव शोका॥
देह धरे कर यह फल भाई। भजिय राम सब काम बिहाई॥
सोइ गुणज्ञ सोई बड़ भागी। जो रघुवीर चरण अनुरागी॥

दो०—निज इच्छा प्रभु अवतरै, सुर महि गो द्विज लागि।
सगुण उपासक रहहिं सब, मोक्ष सकल सुख त्यागि॥

चौ०—पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं तात होइ तुम पाहीं॥

दो०—भवभेषज रघुनाथ यश, सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन कर सकल मनोरथहिं, सिद्ध करहिं त्रिपुरारि॥



॥ शुद्धि पत्र ॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२	दोनो	दोनों
२	१४	बलवान्	बलवान्
१३	७	था	थी
४	७	पीछ	पीछे
४	२३	मञ्जन	मज्जन
६	६	शिव जा	शिव जी
६	१३	कत्तव्य कम	कर्त्तव्य कर्म
६	२६	आग	आगे
६	२८	पपा	पंपा
७	७	विस्तारपूवक	विस्तारपूर्वक
७	१०	का	की
७	२३	।दया	दिया
८	११	बड़	बड़े
९	१२	यहां	इहाँ
९	२०	निहार	निहारें
१८	५	क्या य	क्या ये
१८	२१	संयुक्त हा	संयुक्त हो
१८	२३	टहराया	ठहराया
१८	२५	करत	करते
१९	१२	अगे	आगे
१९	२१	सा	सो
२०	२०	पहिचनता	पहिचानता
२१	१३	लडने	लड़ने
२१	२०	भैंमे	भैंसे
२६	१०	तारे	तोरे
२६	१५	कारयत्	कारयेत्
२६	२२	साग्हने	साम्हने
२८	१७	सपदा	संपदा
३१	२२	भद	भेद
३१	२३	कहा	कही
३२	२	पड़	पड़े
३२	१०	बहत	कहत
३७	१९	पुत्रो पचारितं	पुत्रोपचारितं
३८	१३	बबर	बबूर
३९	२९	वसुधा लिंगन	वसुधालिंगन
४१	२२	अगद	अंगद
४३	५	बनावर	बनाकर
४५	३०	सत	संत
४९	२	छुट्ारा	छुटकारा
५२	१६	विविधि	विविध
५२	१७	ह्वै धाव	ह्वै धावे
५३	३	हरषि	हर्ष
५४	१	नीच	नीचे
५५	१७	उन का	उन की
५५	२४	दुःख	दुख
५६	६	ता	तो
६०	२९	सघृत	सघृतं
६५	१९	भभूक	भभूकैं
६८	२८	स्वादिष्ट	स्वादिष्ठ
७०	१७	सिद्धि	सिद्ध
७२	२८	त	तैं
७५	२३	ह	हैं
७६	१४	मुक्ति क	मुक्ति को
८०	१	द्दष्टि	दृष्टि
८२	५	पपासुर	पंपासर
८२	१६	रहयो	रह्यो
८६	१६	पावे	पागे
८८	१०	पवत	पर्वत

पण्डित विनायकराव

(पूर्व) असिस्टेण्ट सुपरिंटेण्डेण्ट ट्रेनिंग इंस्टिट्यूशन (सांप्रत) पेंशनर जबलपुर की बनाई हुई पुस्तकें और उनके प्रशंसापत्र आदि।

(१) तुलसीकृत रामायण आरण्य काण्ड विनायकी टीका सहित मूल्य ॥)

इस में कठिन पद्यों का अन्वय शब्दार्थ, पदच्छेद, अनेक प्रकार के अर्थ, अनेकानेक टिप्पणियां, उल्लेख, जीवनचरित्र, शंकाएं (समाधान सहित) विविध कथाएं, संस्कृत एवं हिन्दी भाषा कवियों की कविता, पिङ्गल विचार इत्यादि, यथोचित स्थानों में दिये गये हैं॥

इस की दो हज़ार प्रतियां बिक चुकी हैं। दूसरे संस्करण में (१) बहुतेरे कवियों की कविता आदि अनेक उपयोगी बात यथोचित स्थानों में और भी मिला दी गई हैं, (२) मूल और टीका के अक्षर पहिली आवृत्ति की अपेक्षा बड़े रक्खे गये हैं, (३) काग़ज़ भी मोटा और चिकना लगाया गया है और (४) पृष्ठ भी अयोध्या-कांड का श्री विनायकी टीका ही के अनुसार अर्थात् कुछ बड़े रक्खे गये हैं इसी कारण पृष्ठ संख्या तो कम गई है परन्तु टीका में इतना सब होने पर भी दाम वही आठ आना मात्र हैं॥

(२) श्री तुलसीकृत रामायण अयोध्या कांड श्री विनायकी टीका सहित न्यौछावर १।)

समालोचना—हितकारिणी (पत्रिका) जबलपुर।

वास्तव में इस रीति पर हिन्दी के किसी काव्य ग्रंथ की टीका आज तक नहीं छपी। इस टीका में शब्दार्थ, गूढ़ार्थ, भावार्थ सभी कुछ भरा है। संस्कृत के कठिन २ शब्दों की व्युत्पत्ति भी उचित स्थानों पर दी है और अन्वय करते हुए शब्दार्थ देकर भावार्थ दिया है शंका समाधान भी खूब किया है और भिन्न २ शास्त्रों व इतिहासों का जहां संकेत है उस का स्पष्टीकरण भी कर दिखाया है। इस के सिवाय हिन्दी व संस्कृत के मुख्य २ कवियों के काव्य सौंदर्य का भी रसास्वादन अनायास ही मिल जाता है। रामायण के दोहा, चौपाई आदि भिन्न २ छन्दों का निरूपण भी इस टीका में पिंगलशास्त्र की अनोखी रीति से किया है और प्रधान २ अलंकारों का भी रूप दर्शाया है। मेट्रीक्यूलेशन परीक्षा के लिये जो विद्यार्थी अयोध्या-कांड पढ़ते हैं उन की तो यह बड़े ही काम की वस्तु है॥

समालोचना—गृहलक्ष्मी, सम्पादक पं० सुदर्शनाचार्य्य बी. ए.-प्रयाग

अब तक जितनी टीकाएँ गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस पर छपी हैं उन में निस्सन्देह यह सब से उत्तम है। जिन विद्यार्थियों के कोर्स में अयोध्या कांड भी है उन के लिये तो कल्पवृक्ष ही समझना चाहिये। टीका की उत्तमता का निचोड़ उस की पुरौनी में है। इस में जहां तक अयोध्या कांड का सम्बन्ध है वहां तक पिंगल, अलंकार, व्याकरण, कथाओं का सार आदि बड़ी योग्यता से वर्णन किया गया है॥

अङ्गरेज़ी पत्र का अनुवाद, नागपुर,

प्रिय पण्डित जी,

तुलसीदास कृत अयोध्या काण्ड की श्री विनायकी टीका मैं ने बड़ी प्रसन्नता से पढ़ी, रचना बहुत ही उत्तम है क्योंकि वह साधारण पढ़ने वालों तथा मेट्रीक्यूलेशन परीक्षा की तैयारी करने वाले विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है। टिप्पणियों पर तो मेरा विशेष ध्यान झुका उन से मूल का स्पष्टीकरण भलीभांति हो जाता है॥

(सही) रायबहादुर हीरालाल, बी. ए. एफ. आर. ए. एस.

अङ्गरेज़ी पत्र का अनुवाद--बिलासपुर.

मेरे प्रिय पण्डित जी कवि 'नायक',

रामायण पर आप की टीका तो अद्वितीय ही है इस का प्रभाव साहित्य प्रेमियों पर बहुत पड़ रहा है। वह इतनी स्पष्ट और ऐसी संगतियुक्त है कि जितने गहरे उस में पैठते जाओ उतना ही गम्भीर आनन्द उस से प्राप्त होता जाता है। टिप्पणियां और ऐतिहासिक उल्लेख सम्पूर्ण आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं मनुष्य को उस के पत्रा पलटते २ विशेष आनन्द होता है। बहुत विस्तृत न होकर वह तो सारगर्भित है और इतने पर भी यथायोग्य है। परमेश्वर आप की आयु को बढ़ावे जिससे आप इस कार्य को जो उपयोगी है पूरा कर सकें॥

(सही) बी. जगन्नाथप्रसाद 'भानुकवि' सेटिलमेण्ट आफ़ीसर।

(३) 'अयोध्या रत्नभण्डार' नाम की पुस्तक मध्यप्रदेश की हिन्दी शालाओं में लाइब्रेरी (पुस्तकालय) और इनाम के लिये मंज़ूर की गई है (मूल्य ढाई आना)॥

(सही) ए. जी. राइट डायरेक्टर शिक्षाखाता, मध्यप्रदेश।

समालोचना—इस में श्री तुलसीदास जी के कथनानुसार संसार के व्यवहारों पर तथा परमेश्वर की भक्ति, राजभक्ति, गुरुजनों पर प्रेम, सम्बन्धियों का स्नेहादि अनेक उपयोगी नैतिक विषयों पर उपदेश हैं॥

हितकारिणी (पत्रिका) जबलपुर।

प्रिय पण्डित विनायक राव जी,

आप की पुस्तक 'अयोध्या रत्नभण्डार' हमारी हिन्दी शालाओं के पाठक और विद्यार्थियों के लिये बहुत उपयोगी मार्गदर्शिका है। क्योंकि उस में नीति मार्ग के विचारों के उदाहरण भरे हुए हैं जिन के द्वारा चाल चलन के सुधराव में सच्ची सहायता हो सक्ती है॥

(सही) हनुमानप्रसाद अ० सर्किल इन्स्पेक्टर शिक्षाखाता-जबलपुर।

अङ्गरेजी पत्र का अनुवाद:—

मैं समझता हूं कि यह पुस्तक नीति उपदेशों से भरी हुई है जो बालकों के लिये बहुत उपयोगी है। पण्डित विनायक राव हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं और इस पुस्तक को रचकर उन्हों ने जवान मनुष्यों और बालकों के हृदय को सुधारने के विचार से बड़ा भारी उपकार किया है॥

(सही) रायबहादुर सदाशिव जयराम एम. ए. संस्कृत प्रोफ़ेसर, गवर्नमेंट कालेज-जबलपुर

(४) व्याख्याविधि—इस में बहुतेरी नवीन उपयोगी और उत्तम २ बातों का समावेश किया गया है, यथा—परिभाषा, सूचना, विस्तारपूर्वक वाक्य पृथक्करण और व्याख्या तथा वाक्य पृथक्करण के बहुत से प्रश्न तथा टीचर्स सार्टीफ़िकेट हाई स्कूल स्कालर्शिप और एण्ट्रेंस परीक्षा के व्याकरण सम्बन्धी प्रश्न और बहुतसी उपयोगी सूचनाएँ हैं. दाम वही अढ़ाई आना॥

(५) परीक्षा पास—नार्मल स्कूल में भरती होने या परीक्षा पास की आस वाले 'परीक्षा पास' से आठ ही आने में सोलह आने पास होने का विश्वास रक्खें॥

(६) जटल क़ाफ़िया—हँसी दिल्लगी के साथ ही साथ उपदेशों से भरी हुई सब को हँसाने हारी दो आने वाली यह पुस्तक निराली छटा छहरा रही है॥

(७) किष्किन्धा कांड श्री विनायकी टीका सहित न्यौछावर छः आना. (८) सुन्दरकांड की विनायकी टीका छप रही है॥

विनायक राव पेंशनर-लार्डगंज जबलपुर।

